ISSN : 0373-1200

फरवरी 2002

सी. एस. आई. आर. तथा डी. बी. टी. नई दिल्ली के आंशिक अनुदान द्वारा प्रकाशित
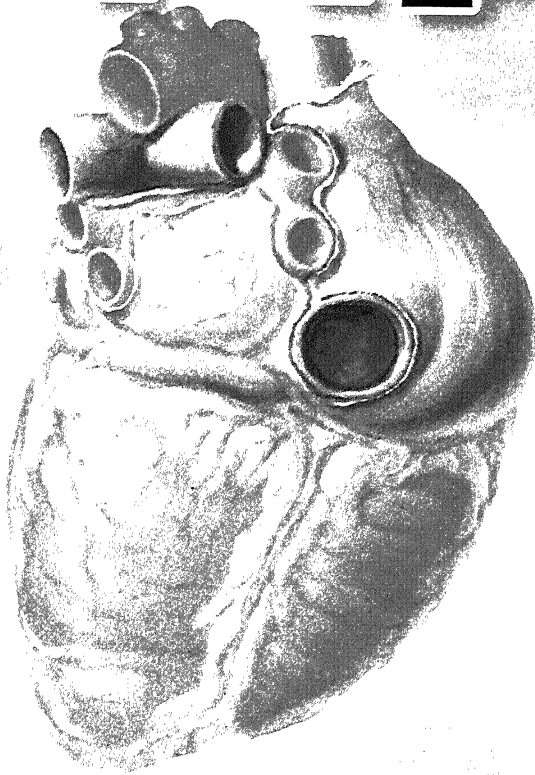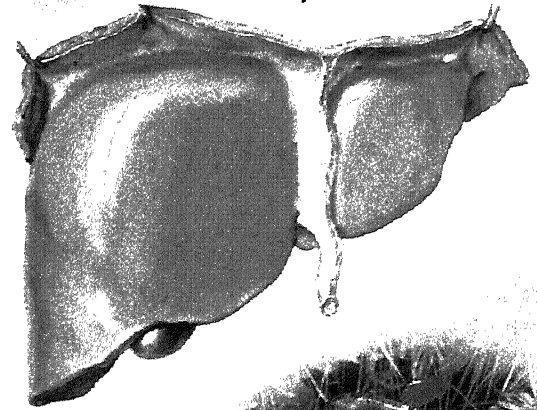
विज्ञान

परिषद् की स्थापना 10 मार्च 1913
विज्ञान का प्रकाशन अप्रैल 1915
वर्ष 87 अंक 11
फरवरी 2002

मूल्य

आजीवन व्यक्तिगत : 750 रुपये
आजीवन संस्थागत : 1,500 रुपये
त्रिवार्षिक : 210 रुपये
वार्षिक : 75 रुपये
यह प्रति : 7 रुपये

सभापति

डॉ० (श्रीमती) मंजु शर्मा

सम्पादक एवं प्रकाशक

डॉ० शिवगोपाल मिश्र

प्रधानमंत्री, विज्ञान परिषद् प्रयाग

मुद्रक

नागरी प्रेस

91/186, अलोपी बाग, इलाहाबाद
फोन : 502935, 500068

कम्प्यूटर कम्पोजिंग

शादाब खालिद

सम्पर्क

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211002
फोन : 460001 ई–मेल : vigyan1@sancharnet.in
वेबसाइट : www.webvigyan.com

विषय सूची

सामाजिक-आर्थिक प्रगति के लिए नवजैविकी

श्रीमती डॉ0 मंजु शर्मा

16 नवम्बर 2001 को बीरबल साहनी पुरावानस्पतिक संस्थान, लखनऊ में दिया गया प्रो. बीरबल साहनी स्मृति व्याख्यान

पुरावनस्पतिकी प्राचीन जीवन का अध्ययन करने वाले विज्ञान पुराजीवाश्म विज्ञान की प्रमुख शाखा है। ज्ञात हो कि सबसे पुराने फासिल आर्कियन काल के हैं जो जो लगभग 2.5 से 3 करोड़ वर्ष पुराने हैं। पुरावानस्पतिकी में सभी पौधों तथा पौधों जैसे समस्त जीवों यथा यीस्ट, बैक्टीरिया से लेकर रेडवुड तथा आर्किड तक का अध्ययन किया जाता है। पुरावनास्पतिकी में पुराजीवाश्म विज्ञान का अत्यधिक महत्व है क्योंकि इसमें विभिन्न स्थलों के संस्तरों, भूगर्भीय निर्धारण तथा सहसम्बन्ध का सही सही ज्ञान प्राप्त होता है।

उन्नीसवीं सदी में डॉ0 डब्ल्यू.सी. विलियमसन ने ब्रिटिश कोल बाल्स का अध्ययन करके प्रिकैम्ब्रियन पुरावानस्पतिकी में महत्वपूर्ण योगदान किया। फासिल शैवालों के अध्ययनों से पृथ्वी पर जीवन की प्राचीनता तथा केन्द्रक युक्त जीवों के विषय में ज्ञान प्राप्त हुआ।

हमारी जैव विविधता और जैव संसाधन

नवजैविकी (New Biology) के क्षेत्र में शोध कार्य करने के पूर्व हमें अपनी समृद्ध जैव विविधता का ज्ञान आवश्यक है। भारतीय उपमहाद्वीप अपनी स्थलाकृति, जलवायु तथा आवास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जैव विविधता सजीव प्राणियों तथा उनके उपयोगी पदार्थों की विविधता है जिसमें सभी वनस्पतियों तथा प्राणियों के साथ ही वाइरसों, जीवाणुओं, कवकों तथा अन्य सूक्ष्मजीवों की आनुवांशिक विविधता सम्मिलित है। आज यह जैव विविधता करोड़ों लोगों की सम्पन्नता एवं आजीविका का साधन बनी हुई है। यह विविधता विभिन्न प्रजातियों की संख्या में तथा जातियों प्रजातियों के स्तर पर पाई जाती है।

भारत में ऐंजियोस्पर्मों की 17,500, जिम्नोस्पर्मों की 48, फर्नों की 1200, शैवालों की 6,500, कवकों की 14,500, लाइकनों की 2,500, लिबवर्टो की 845 तथा काइयों की 1980 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। पादप सम्पदा की यह विपुल विविधता मानव के अस्तित्व से सीधे जुड़ी है और हमारे इस पृथ्वी ग्रह की पारिस्थितिक सुरक्षा के लिए जिम्मेदार है। यही वह क्षेत्र है जहाँ नवजैविकी में जैवतकनीकों तथा खोजों का सर्वाधिक महत्व है। पृथ्वी पर वनस्पतियों तथा जन्तुओं की नई नई जातियों की खोजें होने पर भी अभी भी सैकड़ों जातियों की खोज एवं उनका वर्गीकरण जीवविदों के सम्मुख समस्या बना हुआ है।

भौगोलिक विविधता के कारण विषुवत रेखा से ध्रुवों तक विविधता में ह्रास हुआ है। हमारे जैसे उष्ण देशों में जहाँ जनसंख्या अधिक है और जिसमें तीव्र दर से वृद्धि हो रही है यह विविधता सर्वाधिक क्षतिग्रस्त हुई है। इसे हम पशुओं और वनस्पतियों के विरुद्ध मानवीय युद्ध की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। बढ़ती जनसंख्या तथा सम्पत्ति के असमान वितरण के कारण प्राकृतिक संसाधनों का दोहन हो रहा है जिससे वे अस्थिर हुए हैं। फलस्वरूप जैव विविधता की सर्वाधिक क्षति हुई है। अनुमान है कि अगले 10 वर्षों में पृथ्वी की सम्पूर्ण जैव विविधता का, जिसमें 10 लाख से अधिक प्रजातियाँ होंगी, विलोप हो जाएगा।

सम्प्रति पृथ्वी के कुल क्षेत्रफल का 35 प्रतिशत मरुस्थलीकरण की चपेट में है। प्रदूषित मृदाओं तथा

प्रदूषित जल का क्षेत्रफल बेतहाशा बढ़ रहा है। हरित ग्रह प्रभाव का सीधा असर विश्व जलवायु पर पड़ रहा है। पृथ्वी के जलचरों तथा स्थलचारी प्राणियों का सफाया हो रहा है और हमारी माता पृथ्वी का भीषण अपरदन हो रहा है। अतः कृषि को लेकर हमारी चिन्ताएँ स्वाभाविक हैं।

वैश्विक जैव सम्पदा

भारत जैव विविधता का वृहद केन्द्र है। भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण से 45000 पादप प्रजातियों की पहचान हुई है जिसमें से 15000 से अधिक पुष्पी पौधे हैं, जिनमें से 37 प्रतिशत स्थानिक हैं और 1500 प्रजातियों के नष्ट होने का खतरा है। अभी तक जिन 5000 प्रजातियों का अध्ययन किया जा चुका है उनमें से 30 उपयोगी प्रजातियाँ हैं, जिनके द्वारा 95 प्रतिशत मानव उपयोगी सामग्री प्रदान की जाती है। इनमें से तीन मुख्य फसलों के नाम लिए जा सकते हैं। ये हैं मक्का, धान तथा गेहूँ। अतः आवश्यकता है कि राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न फसलों के आनुवंशिक संसाधनों से सम्बन्धित कार्यक्रम तैयार किया जाए। इसी दृष्टि से विश्व भर में 25 ऐसे तप्त स्थलों की पहचान की गई है जिनका क्षेत्रफल 746000 वर्ग किलोमीटर है और इसमें कुल 45000 प्रजातियाँ समाहित हैं। भारत का क्षेत्रफल विश्व के क्षेत्रफल का 2.4 प्रतिशत है, किन्तु विश्व की कुल जैव सम्पदा का 8.1 प्रतिशत यहीं है जिसमें लगभग 130000 प्रजातियाँ हैं। विश्व के दो तप्त स्थल भारत में ही हैं– ये हैं पूर्वी हिमालय तथा पश्चिमी घाट, जिनमें से हिमालयी क्षेत्र सर्वाधिक तप्त है।

हमें अधिकतम कृषि उत्पादन के लिए उपलब्ध कृषिभूमि का सदुपयोग करते हुए कृषि की नवीनतम विकसित विधियों को उपयोग में लाना होगा।

नवजैविकी (New Biology)

इक्कीसवीं सदी में जीनोम प्रौद्योगिकी नवीन सूचनिकी का अभिन्न अंग है। उच्च कार्य दक्षता वाले कम्पयूटर, डीएनए प्रवर्धन तथा अनुक्रमण, जीनोम एसेम्बली तथा जीन पूर्वानुमान, प्रोटियोनामिक्स तथा मास स्पेक्ट्रोस्कोपी, विभिन्न बायोप्सियों का विकास, जीन अभिव्यक्ति– ये हैं वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीय क्रान्तियाँ जो तीव्रगति से घटित हो रही हैं। अब तो संयुक्त राज्य अमेरिका, स्विटजरलैंड तथा अन्य प्रगतिशील देशों के वैज्ञानिक ऐसी कृत्रिम कोशिकाएँ बनाने पर तुले हुए हैं जो प्रतिकृतियन कर सकें और विकसित हो सकें। सम्प्रति जैविकी अध्ययन के लिए अनेक माडल उपलब्ध हैं, जिनमें जीनोमिक्स अध्ययन से लेकर सूक्ष्मजीवी अध्ययन तथा प्रोटियोमिक्स तक सम्मिलित हैं। नवजैविकी रूपरेखा को स्पष्ट किया जा सकता है। मानव जीनोम प्रोजेक्ट से उत्पन्न उपकरणों के द्वारा सम्पूर्ण जीनोम कैटालाग, सूक्ष्मजीव, अरैबिडोप्सिस सदृश पौधे, फल की मक्खी ड्रोसोफिल मैजेनोगैस्टड, गोलकृमि, सीनारैब्डिटिस एलेगन्स उत्पन्न किये जा सकते हैं। सम्पूर्ण जीनोम अनुक्रमों की खोज इक्कीसवीं सदी की जैविकी की आधारशिला का काम करने वाली होंगी।

जैव प्रौद्योगिकी तथा आनुवांशिक अभियान्त्रिकी के प्रचलन से अनेक समस्याओं का समाधान सम्पन्न हुआ है। जैव प्रौद्योगिकी वस्तुतः जैव सिद्धान्तों का अभियान्त्रिकी रूपान्तरण है। जैव प्रौद्योगिकी के द्वारा उन जैव प्रक्रमों को क्रियान्वित किया जा सकता है जो मानव के लिए उपयोगी हैं। अणु जैविकी एवं आनुवांशिक अभियान्त्रिकी के द्वारा वांछित लक्षणों वाली फसलें तैयार की जा सकती हैं।

उपलब्धियाँ तथा सम्प्रयोग

नवजैविकी तथा जैवप्रौद्योगिकी का उपयोग वर्षों से नाना प्रकार के उद्योगों में नवीन तथा उपयोगी उत्पादों को तैयार करने में होता रहा है। इन उत्पादों में मधुमेह के उपचार हेतु मानव इंसुलिन, अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण के लिए वृद्धिकारक, दिल के दौरे के उपचार हेतु विभिन्न उत्पाद, एड्स, हेपेटाइटिस तथा खाद्य उत्पादन में प्रमुख एंजाइमों की पहचान के लिए अनेक प्रकार के किट मुख्य हैं। सबसे पहली जीवन रक्षक औषधि का उत्पादन पुनर्संयोजी डीएनए प्रौद्योगिकी द्वारा ही सम्भव हुआ है। इसके बाद दर्जनों औषधियाँ तैयार की जा चुकी हैं। मनुष्य के शरीर में पाई जाने वाली अनेक जैव औषधियों को उन्हीं स्वरूपों में उत्पन्न किया जा सकता है।

विगत 20 वर्षों से जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्लोनिंग एक महत्वपूर्ण साधन सिद्ध हुआ है। मानव कोशिकाओं, अंगों तथा ऊतकों के क्लोनन से त्वचा, कार्टिलेज तथा अस्थि ऊतक तैयार किये जा सकते हैं जिनका उपयोग जले तथा दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों के उपचार में किया जा सकता है।

स्टेम कोशिकाओं के विकास क्रम के ज्ञान से

कैंसर पर नियन्त्रण, मेरुदण्ड तथा मस्तिष्क ऊतकों के पुनरुत्पादन तथा वृद्धावस्था के कारण उत्पन्न अनेक रोगों के उपचार में सफलता मिली है। प्राणियों को जीवनदान देने में स्टेम कोशिका जैविकी पूर्ण तथा सक्षम है।

आधुनिक जैविकी के सर्वोच्च विकासों में वैक्सीन उल्लेखनीय है। इनके द्वारा खसरा तथा पोलियों का उन्मूलन सम्भव हो सकता है। किन्तु अब भी कुछ रोग बचे हुए हैं यथा मलेरिया, एड्स, हार्पीज, हेपेटाइटिस–सी. , जिनके लिए प्रभावशाली वैक्सीनों की खोज की जानी है।

विश्व की बढ़ती जनसंख्या के उदर पोषण के लिए पर्याप्त खाद्यान्न उत्पन्न करने की दिशा में तो जैव प्रौद्योगिकी से बहुत आशाएँ हैं। तृतीय विश्व में पाँच वर्ष से कम आयु के लगभग 1 करोड़ बच्चे प्रतिवर्ष कुपोषण के कारण मृत्यु के शिकार हो रहे हैं। कृष्य भूमि का क्षेत्रफल सीमित होने से पर्याप्त मात्रा में मक्का, धान, गेहूँ, आलू आदि की उपज लेने के लिए प्रति एकड़ उपज में वृद्धि अनिवार्य है। इसमें सन्देह नहीं कि जैव प्रौद्योगिकी ही विश्वव्यापी कुपोषण को मिटाने में काम आवेगी। विटामिन ए तथा लौह की कमी से बच्चों में अन्धता तथा माताओं में रक्ताल्पता से लड़ने के लिए जैव प्रौद्योगिकी का उपयोग कर एक नवीन प्रकार का धान 'गोल्डन राइस' उत्पन्न करने के प्रयास हो रहे हैं। जिसमें विटामिन ए का पूर्वगामी केरोटीन तथा लौह होंगे। यह परिवर्धित चावल कुपोषण को दूर कर सकेगा। इस तरह से आनुवांशिक रूप से परिवर्धित धान की उपज में 35 प्रतिशत की वृद्धि भी हो सकेगी।

उन्नतिशील जैविकी के साधनों से पौधों में ऐसे जीन डाले जा सकेंगे जिससे वे हानिकारक कीटों के लिए प्रतिरोधी बन सकेंगे। उदाहरणार्थ कपास, मक्का तथा आलू में Bt जीन (जो मृदाबीजाणु द्वारा उत्पन्न डेल्टा टाक्सिन प्रोटीन से प्राप्त है) अनेक प्रकार के कीटों के लिए विषैला बनेगा किन्तु मनुष्यों तथा पशुओं पर कोई प्रभाव नहीं डालेगा। Bt कपास का उत्पादन शुरू हो गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में अप्रैल 2000 में मेसेन्जर नामक प्रोटीन, जो आनुवांशिक रूप से तैयार बैक्टीरिया से उत्पन्न किया गया है, इसका उपयोग रासायनिक पेप्टीसाइडों के विकल्प के रूप में सुझाया गया है। मेसेंजर प्रोटीन प्रथम प्राकृतिक उत्पाद है जो फसलों को प्रतिरोधी बना सकेगा।

औषधीय तथा कृषीय जैव प्रौद्योगिकी के संमिलन से ऐसी पादप किस्में विकसित की जा सकती हैं जिनसे स्वास्थ्य में सुधार होगा। अब ऐसे प्रयास हो रहे है कि औषधियों तथा वैक्सीनों को भोज्य पदार्थों के अंग रूप में प्रदान किया जाए। इस तरह पोषक आहारों (Neutraceutical foods) की शुरुआत हुई है।

नवजैविकी ने जैवविविधता के संरक्षण तथा उसके टिकाऊ उपयोग के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। उदाहरणार्थ जैव उपचार (Bioremediation) के द्वारा आपत्तिजनक अपशिष्टों को सुरक्षित अपशिष्टों में बदला जा सकता है।

इसी तरह जीवों तथा एंजाइमों के उत्प्रेरकीय गुणों का उपयोग जैव ईंधन सेल बनाने में किया जा सकेगा। ये सेल रासायनिक ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में परिणत कर सकेंगे।

हाल के वर्षों में बायोचिप्स के रूप में जैविक पदार्थों का उपयोग होने लगा है जिससे कम्प्यूटर विकास में मदद मिलेगी। ये बायोचिप्स कम्प्यूटर में प्रयुक्त होने वाले परम्परागत सिलिकन चिप्स का स्थान ग्रहण कर सकेंगे। इस तरह के जैव अणुक कम्प्यूटर सुपर कम्प्यूटरों से हजारों गुने छोटे होंगे और उनकी गति तीव्र होगी।

अणुजैविकी प्रौद्योगिकी द्वारा संचालित प्रक्रम हैं जिसके फलस्वरूप विगत दशक में अनेक नवीन प्रविधियों का जन्म हुआ है। फलस्वरूप क्लोनिंग तथा एक समय में एक जीन के अध्ययन की विचारधारा पूरी तरह बदल चुकी है। अब एक ही समय अनेक जीनों का अध्ययन किया जा सकता है जिसके लिए माइक्रोएरे या डीएनए चिप प्रौद्योगिकी व्यवहृत होती है। इसी का परिणाम है कि मानव जीनोम का पूरा मानचित्र तैयार हो सका है। इससे ऐसे मानचित्र बनाए जा सकते हैं जो किसी जीन या प्रोटीन के दोषों या गुणों की पहचान कर सकते हैं। आधुनिक जैविकी संसाधनों के ऐसे अनेक लाभ हैं।

सचिव, जैव प्रौद्योगिकी विभाग
भारत सरकार
तथा
सभापति
विज्ञान परिषद्

कहीं हार्ट फेल तो नहीं हो रहा है ?

✍ डॉ. जे. एल. अग्रवाल

हृदय का नियमित निरन्तर गति से धड़कना जीवन के लिए जरूरी है। हृदय पम्प की तरह कार्य करता है, जिसके कारण शरीर के विभिन्न अंगों को निन्तर रक्त पहुँचता रहता है और ऊतकों, कोशिकाओं को अपना कार्य करने के लिए आक्सीजन और पोषक तत्वों की अबाध रूप से आपूर्ति होती रहती है। साथ ही दूषित हानिकारक पदार्थ हटते रहते हैं। दिल की धड़कन भ्रूण में गर्भ काल में ही शुरू हो जाती है और आजीवन चलती रहती है। यदि धड़कन बंद हो जाए तो कुछ मिनटों में ही मृत्यु हो जाती है। हृदय के धड़कने की गति और शक्ति शरीर की जरूरत के अनुसार बदलती रहती है। व्यायाम, ज्वर, चढ़ाई चढ़ने, खेलने, साइकिल चलाने, तैरने से शरीर की आक्सीजन और पोषक तत्वों की जरूरतें बढ़ जाती हैं और हृदय के धड़कने की गति और शक्ति बढ़ जाती है। यदि हृदय के संकुचन की शक्ति शरीर के अनुसार नहीं बढ़ती तो यह दशा 'हार्ट फेल्योर' कहलाती है। हार्ट फेल्योर कई प्रकार का हो सकता है। अचानक या धीरे–धीरे, बायाँ या दायाँ हार्ट फेल्योर आदि। हार्ट फेल्योर होने पर मरीज की कार्य क्षमता घट जाती है उचित उपचार के अभाव में हार्ट फेल्योर की परिणति मृत्यु से होती है।

हार्ट फेल्योर क्यों होता है ?

यदि कोई रोग न हो तो हृदय निरन्तर धड़कता रहता है और कभी थकता नहीं परन्तु अनेक रोगों के कारण हृदय की कार्य क्षमता घट जाती है। हार्ट फेल्योर किसी भी आयु में हो सकता है। वयस्कों में हार्ट फेल्योर होने का सबसे प्रमुख कारण हृदय धमनी रोग 'एन्जाइना' या 'हार्ट अटैक' है। हृदय की कारोनरी धमनियों में वसा कोलेस्ट्राल अन्दरूनी सतह में जमा होने से धमनियों का व्यास कम हो जाता है या वे बंद हो जाती हैं, जिससे हृदय की मांसपेशियाँ पूरी शक्ति से संकुचित नहीं हो पाती हैं। हार्ट अटैक के मरीजों में मांसपेशियों के नष्ट हो जाने के कारण हृदय की कार्य–क्षमता कम हो जाने से भी मरीज का हार्ट फेल होने लगता है। उच्च रक्तचाप के मरीजों मं रक्तचाप ज्यादा होने के कारण हृदय को ज्यादा शक्ति से संकुचित होना पड़ता है जिससे शुरू में हृदय का आकार बढ़ जाता है जिसको वेंट्रीकुलर हाइपर ट्राफी कहते हैं, बाद में इनका हार्ट फेल्योर होने लगता है।

मानव हृदय में चार कोष्ठक होते हैं। इनमें मध्य में कपाट मौजूद होते हैं जिससे रक्त का बहाव सही दिशा में हो सके। यदि जन्म से ही या जन्म के बाद कपाट सिकुड़ जाते हैं या पूरी तरह बंद नहीं होते तो रक्त बहाव गड़बड़ा जाता है जिसके परिणामस्वरूप रक्त किसी एक कोष्ठक में ज्यादा मात्रा में इकट्ठा होने लगता है। हृदय का आकार बढ़ने के साथ हार्ट फेल्योर होने लगता है। हृदय के कपाटों में सिकुड़न जिसको स्टोनोसिस और पूरी तरह बंद न होना (इनकांपिटेन्स या रिगरजिटेशन) हृदय के रूमेटिक वाल्व रोगों के क़ारण बचपन में हार्ट फेल्योर होना सामान्य समस्या है।

हृदय की मांसपेशियों में संक्रमण, अत्यधिक शराब पीने या अन्य कारणों से हृदय की शक्ति कम हो जाती है तो भी हार्ट फेल्योर हो सकता है।

यदि हृदय की झिल्ली संक्रमण के कारण सिकुड़ गई है जिसे 'कन्सट्रिक्टिव पेरीकार्डयासिस' कहते हैं। तो हृदय पर दबाव पड़ने से भी हार्ट फेल्योर हो सकता है।

यदि शरीर में जल या रक्त की मात्रा बढ़ जाती है तो लम्बे समय तक हृदय को अपनी कार्यक्षमता से ज्यादा कार्य करने के कारण हार्ट फेल्योर होने का डर

रहता है। यही दशा गुर्दों के फेल होने, शिराओं द्वारा तेजी से ज्यादा मात्रा में ग्लूकोज या रक्त चढ़ाने के कारण हो सकती है।

यदि आघात या अन्य कारणों से हृदय में रक्त नहीं पहुँच पाता तो भी हार्ट फेल्योर होने का भय रहता है।

फेफड़ों की धमनियों में थक्का बनने के कारण, रुकावट आ जाने की दशा में भी फेफड़ों से शुद्ध रक्त हृदय में न पहुंचने से हार्ट फेल्योर हो सकता है।

यदि हृदय की कार्य–क्षमता कम है तो ज्वर ग्रसित होने, अचानक हृदय गति बढ़ जाने, वातावरण में आक्सीजन की कमी, अनीमिया, एन्जाइना, थायरायड हार्मोन के ज्यादा स्राव, हृदय धड़कने की गति अनियन्त्रित होने, क्षमता से ज्यादा परिश्रम, व्यायाम करने, मानसिक तनाव, अत्यधिक मात्रा में नमक के सेवन से हार्ट फेल्योर की शुरुआत हो सकती है। यदि पहले से ही हार्ट फेल्योर की शुरुआती अवस्था है तो समस्या गंभीर रूप ले सकती है।

हार्ट फेल्योर होने के लक्षण

हार्ट फेल्योर की दशा में मरीज साधारण या सामान्य कार्य करने पर थक जाते हैं, उन्हें कमजोरी लगती है, पेट में दर्द, पेट भरा भरा लगता है, भूख कम हो जाती है, मितली या उल्टी हो सकती है, कार्य करने में श्वास फूलने लगती है और कार्य–क्षमता धीरे धीरे घट जाती है। खाँसी आती है, लेटने में मरीजों की श्वास फूलने लगती है, सोते समय नींद खुल जाती है तथा बैठने या खड़े होने पर ही आराम मिलता है।

इन मरीजों को रात में पेशाब ज्यादा लगती है, इनके हाथ पैर पीलापन लिए और ठंडे होते हैं। पैरों मे सूजन आ जाती है। हार्ट फेल्योर होने के कारण मस्तिष्क का रक्त प्रवाह कम होने के कारण इनको चक्कर आ सकता है। वे अनिर्णय की स्थिति में रहते हैं, एकाग्र नहीं हो पाते, उनकी याद्दाश्त कम हो जाती है, उन्हें सर दर्द हो सकता है और गहरी नींद नहीं आती।

शरीर में जल की मात्रा बढ़ जाने के कारण शरीर में सूजन आ जाती है (मुख्य रूप से पैरों में) इनके फेफड़ों या पेट में पानी उतर आता है, इनके लिवर का आकार बढ़ जाता है, पीलिया हो सकता है, शरीर कमजोर होकर कंकाल हो जाता है। गले की शिराएँ फैल जाती हैं, हृदय का आकार बढ़ जाता है।

रोग का निदान लक्षण होने या शक होने पर ई. सी.जी. जाँच, छाती के एक्स–रे, इकोकार्डियोग्राम द्वारा किया जाता है। हार्ट फेल्योर के कारण का पता लगाने के लिए चिकित्सक से परामर्श के अनुसार अन्य जाँच कराएँ।

हार्ट फेल्योर का उपचार

हार्ट फेल्योर होने पर इसके कारण का पता लगा कर उपचार करवाना जरूरी है। जब तक कारण का स्थायी निवारण नहीं होता, हार्ट फेल्योर से निजात नहीं मिल सकती है। उच्च रक्तचाप, एन्जाइना, कपाटों के रोग, संक्रमण, इत्यादि रोगों का समुचित उपचार जरूरी है।

यदि किसी कारण जैसे थायराइड हार्मोन के ज्यादा स्राव, अनीमिया, आक्सीजन की कमी, हृदय की अनियमित गति के कारण हार्ट फेल्योर है तो इन रोगों का समुचित उपचार जरूरी है।

हार्ट फेल्योर के मरीजों को नमक कम मात्रा में सेवन करना चाहिए। साथ ही शरीर में जल की मात्रा कम करने के लिए पेशाब ज्यादा होने वाली दवाइयों का सेवन करने का परामर्श दिया जाता है। इसके अतिरिक्त हृदय की मांसपेशियों का रक्त प्रवाह बढ़ाने के लिए, कारोनरी धमनियों को फैलाने वाली दवाएँ, साथ ही हृदय की संकुचन शक्ति बढ़ाने के लिए डिजेटिलिस दवाओं का सेवन करना पड़ता है। साथ ही कारोनरी धमनी में थक्का बनने से रोकने के लिए आधी गोली डिस्प्रिन की प्रतिदिन सेवन करना चाहिए।

हार्ट फेल्योर से कैसे बचें ?

स्वस्थ शरीर के लिए हृदय का स्वस्थ और शक्तिशाली होना जरूरी है जिसके लिए निम्नलिखित

प्रयास करें :

अपना भार नियन्त्रित करें। यदि ज्यादा है तो डायटिंग, व्यायाम कर भार को मानक वजन के आसपास रखें।

नियमित मध्यम गति का शारीरिक व्यायाम करें, कसरत 30–45 मिनट की कम से कम सप्ताह में तीन बार अवश्य करें। इससे हृदय मजबूत होता है, कार्य क्षमता बढ़ जाती है, हृदय धमनी रोग, उच्च रक्त चाप, मधुमेह रोगों की संभावना कम हो जाती है, भार भी कम हो जाता है।

मिठाई, गोश्त, गरिष्ठ, फास्ट फूड का कम से कम सेवन करें। इसी तरह संतृप्त वसा का कम से कम मात्रा में सेवन करें। हृदय और भोजन का अटूट रिश्ता है। संतुलित भोजन पर्याप्त मात्रा में करें। फलों, सब्जियों, फाइबर युक्त साबुत दालों, अन्नों का प्रचुर मात्रा में सेवन करें। भोजन धीरे–धीरे चबा कर खाएँ। रात्रि के भोजन के बाद फौरन न सोएँ, थोड़ी देर अवश्य टहलें। नमक स्वाद से थोड़ी कम मात्रा में सेवन करें। पानी का पर्याप्त मात्रा में सेवन करें।

हृदय का मस्तिष्क से भी अटूट रिश्ता है। दु:ख होने पर कहा जाता है 'दिल टूट गया है', काफी हद तक सत्य है। तनावमुक्त रहें, मनोरंजन के लिए समय निकालें इससे तनाव दूर हो जाता है।

व्यसनों– सिगरेट, तम्बाकू, पान मसाले, गुटखा का सेवन न करें। यदि करते हैं तो परित्याग करें। शराब भी मजबूरी हो तो यदा कदा नियन्त्रित मात्रा में पिएं।

आरामदाये गहरी नींद भी स्वस्थ रहने और हृदय के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। समय से सोएँ।

यदि मधुमेह, उच्च रक्तचाप, एन्जाइना, हृदय कपाट रोग, गुर्दा रोग से ग्रसित हैं तो लापरवाही न करें, उपचार करवाएँ, इन रोगों के कारण हार्ट फेल्योर हो सकता है।

हार्ट फेल्योर गंभीर स्थिति है। इससे बचाव के प्रयास करें। यदि हार्ट फेल्योर के लक्षण हैं तो उपचार, परहेज तथा कारण के निवारण से काफी हद तक सामान्य जीवन जिया जा सकता है।

मेडिकल कालेज
कांगड़ा एट टाडा (हि0प्र0)–176 001

भारतीय विज्ञान कांग्रेस में 15 वैज्ञानिक पुरस्कृत

प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने लखनऊ में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के उद्घाटन समारोह में पन्द्रह वैज्ञानिकों को विज्ञान के क्षेत्र में उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित किया।

इस वर्ष का प्रतिष्ठित आशुतोष मुखर्जी मेमोरियल अवार्ड जे.एन.यू. के अवकाशप्राप्त प्रोफेसर पी.एन. श्रीवास्तव को, सी.वी. रमन जन्मशती पुरस्कार टाटा इन्स्टीट्यूट आफ फण्डामेन्टल रिसर्च के प्रो० एस.एस. झा को, श्रीनिवास रामानुजम जन्मशती पुरस्कार इगनू के कुलपति प्रो० एच.पी. दीक्षित को तथा जवाहर लाल नेहरू जन्मशती पुरस्कार वल्लभ भाई पटेल चेस्ट संस्थान नई दिल्ली के प्रो० ए.एस.पेन्टल व इंटर यूनिवर्सिटी सेन्टर फार एस्ट्रोनामी एण्ड एस्ट्रो फिजिक्स पुणे विश्वविद्यालय के निदेशक प्रो० जे.वी. नार्लिकर को संयुक्त रूप से प्रदान किया गया।

इसी प्रकार मेघनाद साहा जन्मशती पुरस्कार फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी अहमदाबाद के निदेशक प्रो० जी. एस. अग्रवाल को, पी.सी. महलनाबीस जन्मशती पुरस्कार वरिष्ठ वैज्ञानिक प्रो० के.आर. पार्थसारथी को, जे.सी. बोस मेमोरियल पुरस्कार प्रख्यात वैज्ञानिक एम.एस. वाथिलन को, पी.सी. रे मेमोरियल पुरस्कार एस.पी.जी.आई. लखनऊ के प्रो० सी.एल. खेत्रपाल को, होमी जहांगीर भाभा मेमोरियल पुरस्कार वरिष्ठ वैज्ञानिक आर. नटराजन को तथा बी. पी. पाल मेमोरियल पुरस्कार जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार की सचिव डॉ० मंजु शर्मा को प्रदान किया गया। इस वर्ष के मिलेनियम पुरस्कार आई.सी.ए.आर. के महानिदेशक डॉ. पंजाब सिंह, सी.सी.एम.बी. हैदराबाद के निदेशक लाल जी सिंह, आई.एस.एस. बंगलौर के निदेशक प्रो० गोवर्धन मेहता तथा नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी के प्रो० ए. के. जोशी को प्रदान किए गए। इस बार का प्रतिष्ठित जवाहर लाल नेहरू पुरस्कार मिदनापुर सांइस सेन्टर, पश्चिम बंगाल को प्रदान किया गया।

–साभार

बुढ़ापे के विरुद्ध वैज्ञानिकों की जंग

डॉ. प्रदीप कुमार मुखर्जी

दीर्घायु प्राप्त करने की कामना व्यक्ति मात्र के मन में ही रहती है। बड़े–बूढ़े भी आशीर्वाद देते हुए कहते है– दीर्घायु भव :। जीवेम् शरदः शतम् में भी सौ साल तक जीने की लालसा ही छिपी है। जब यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि किमाश्चर्य ? तो उसने जवाब में कहा था कि प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो रहे हैं और जो जिंदा हैं वे अमर होना चाहते हैं। यानी आदि काल से ही अमरत्व की चाह मनुष्य का पीछा कर रही है। लेकिन अमरत्व के पीछे भागते मनुष्य को कुछ भी नसीब न हो सका। आज भी मानव मृत्यु के उतने ही करीब है जितना कि पहले कभी था। नश्वरता जिस तरह पहले एक शाश्वत सत्य था आज भी उतना ही शाश्वत सत्य है।

लेकिन इन सबके बावजूद बुढ़ापे को टालने या उसकी प्रक्रिया को धीमा करने के प्रयासों में वैज्ञानिकों ने कोई भी कोर–कसर नहीं रख छोड़ी है। इसके साथ–साथ ही मनुष्य के अंदर भी चुस्त–तंदरुस्त बने रह कर जीवन का आनंद उठाने की लालसा भी बलवती हुई है। और इस लालसा को फलीभूत करने में चिकित्सा सुविधाओं में निरंतर सुधार तथा स्वास्थ्य के प्रति मनुष्य की स्वयं की जागरूकता ने भी बड़ी सार्थक भूमिका निभाई है। इन सबका मिला–जुला परिणाम है मनुष्य की औसत आयु में वृद्धि। जहाँ दूसरे देशों के निवासियों की औसत आयु 70 वर्ष के ऊपर है, वहीं भारत जैसे विकासशील देश में भी लोगों की औसत आयु 60 वर्ष के पार कर गई है।

अमेरिका में 'इंस्टीट्यूट आफ एजिंग' से जुड़े वैज्ञानिक राबर्ट ए0 बटलर का कहना है कि अधिकांश जरा वैज्ञानिक (जिरेंटोलाजिस्ट) मानते हैं कि प्राकृतिक यानी जन्म के समय आयु 120 वर्ष होती है। यानी उनका मानना है कि मनुष्य का शरीर 120 वर्षों के 'डिजाइन' किया गया है। तो क्या अपने 'डिजाइंड' जीवन काल तक मनुष्य जिंदा रह सकते हैं ? इसके लिए यह जानना जरूरी होगा कि आखिर मनुष्य को बुढ़ापा घेरता क्यों है ?

हमारा शरीर हजारों–करोड़ों कोशिकाओं से मिल कर बना होता है। इन कोशिकाओं का निरंतर विभाजन चलता रहता है। पुरानी कोशिकाएँ एक निश्चित आयु के बाद नष्ट हो जाती हैं और उनका स्थान नई कोशिकाएँ ले लेती हैं। जब तक नई कोशिकाओं के बनने और पुरानी कोशिकाओं के नष्ट होने की दर समान रहती है तब तक शरीर ठीक–ठाक काम करता रहता है और उस पर बुढ़ापे का असर नहीं होता है। लेकिन जब नई कोशिकाओं के बनने की गति कम हो जाती है तब शरीर में धीरे–धीरे जरावस्था का असर होना शुरू होता है। ऐसी दशा में शरीर की त्वचा ढीली पड़ने लगती है और जोड़ सख्त होने लगते हैं जिससे कि शरीर में जोड़ों तथा अन्य किस्म के दर्दों का प्रकोप शुरू हो जाता है। शरीर की विभिन्न जैविक क्रियाएँ जैसे पाचन, श्वसन, उत्सर्जन आदि में भी धीरे–धीरे परिवर्तन आना शुरू हो जाता है। नतीजतन शरीर अनेक तरह की व्याधियों से घिर जाता है। आखिर कोशिका के जीवन और मृत्यु का संचालन कौन करता है ? दरअसल, कोशिकाओं में मौजूद गुणसूत्रों के सिरे पर एक टोपी सदृश संरचना पाई जाती है, ठीक उसी तरह कि जूते की लेस के सिरे पर एक प्लास्टिक की टोपी सी चढ़ी होती है। इस टोपी सृदश रचना को टैलोमियर कहते हैं। हर बार जब कोशिका विभाजित होती है तब टैलोमियर की लम्बाई कम होती जाती है। इस तरह जब घटते–घटते टैलोमियर एक खास लम्बाई को प्राप्त हो जाता है तब कोशिका का विभाजन रुक जाता है। इस अवस्था को सेनसेंस कहते हैं। इस अवस्था मं कोशिका में जो आनुवांशिक सूत्र होते हैं वे उसी ठीक तरह से प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

जब काफी मात्रा में कोशिकाएँ सेनसेंस की अवस्था को पहुँच जाती है तब व्यक्ति जरावस्था का

शिकार हो जाता है। इस तरह टैलोमियर की लम्बाई ही कोशिका की आयु को निश्चित करती है।

वैज्ञानिकों ने प्रोजीरिया से पीड़ित बच्चों, जो कि जल्दी प्रौढ़ हो जाने की बीमारी के शिकार होते हैं, के अध्ययन द्वारा यह पाया कि ऐसे बच्चों की कोशिकाओं में पाए जाने वाले टैलोमियर की लम्बाई प्रौढ़ व्यक्तियों की कोशिकाओं में पाए जाने वाले टैलोमियर की लम्बाई जितनी ही होती है। इससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि प्रौढ़ होना या बुढ़ापे की ओर अग्रसर होना एक आनुवांशिक प्रक्रिया ही है। अगर किसी तरह टैलोमियर की लम्बाई बढ़ाई जा सके तो जराग्रस्त या बुढ़ाती कोशिकाओं को फिर से स्वस्थ बनाया जा सकता है। कुछ वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा यह भी सिद्ध हुआ है कि टैलोमेरेज नामक एंजाइम द्वारा टैलोमियर को 'संरक्षित' कर कोशिकाओं को चिर–स्वस्थ रखा जा सकता है। लेकिन ऐसे अधिकतर प्रयोग चूहों आदि पर ही किए गए हैं।

इंसानों पर भी कुछ शोध–अध्ययन वैज्ञानिकों ने किए हैं। शतायु प्राप्त कुछ फ्रांसीसियों पर अध्ययन कर वे दो ऐसे विशेष जीनों की पहचान कर पाने में सफल हुए हैं जो बुढ़ापे की प्रक्रिया को धीमा करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। ये जीन एपोलिप्रोटीन–ई नामक प्रोटीन तथा एंजिओटैसिन–कंवर्टिंग एंजाइम के निर्माण में सहायक होते हैं। एपोलिप्रोटीन–ई शरीर में कोलेस्ट्रोल के अभिगमन (ट्रांसपोर्ट) में मदद करते हैं जबकि एंजिओटेंसिन कंवर्टिंग एंजाइम की शरीर में रक्तचाप नियंत्रण में विशेष भूमिका होती है। शतायु प्राप्त फ्रांसीसियों में ऐसे जीनों के विकल्पियों की संख्या युवाओं की अपेक्षा कहीं अधिक पाई गई।

कुछ जीव वैज्ञानिक शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता में ह्रास को भी बुढ़ापे के लिए जिम्मेदार मानते हैं। उनके अनुसार जीनों की खराबी के कारण ही बुढ़ापे में रोगों से लड़ने की शक्ति में गिरावट आ जाती है। अतः बुढ़ापे में एक बीमारी का सफलतापूर्वक इलाज होता है तो वार्धक्य जन्य दूसरी बीमारी शीघ्र ही मनुष्य को अपने गिरफ्त में ले लेती है और यही सिलसिला चालू रहता है।

दरअसल, मनुष्य की कोशिकाओं में मौजूद गुणसूत्रों के जो तेइस जोड़े होते हैं उनमें से छठवें जोड़े को मेजर हिस्टोकाम्पेटिबिलिटी काम्पलेक्स कहते हैं। इसी जोड़े पर ही वह जीन स्थित होता है जो हिस्टोकाम्पेटिबिलिटी एंटीजन नामक प्रोटीन के निर्माण एवं उसकी सक्रियता के लिए जिम्मेदार होता है। जब कोई रोगाणु या विषाणु शरीर में प्रवेश करता है जो उसे मार भगाने के लिए श्वेत रक्त (लिम्फोसाइट) कोशिकाओं के सतह पर ही इस एंटीजन या प्रतिजन का निर्माण होने लगता है।

कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय से जुड़े रोवेल फोर्ड ने अपने शोध अध्ययनों द्वारा सन् 1970 में यह बताया था कि मेजर हिस्टोकाम्पेटिबिलिटी काम्प्लेक्स नामक गुणसूत्र के जोड़े की बनावट में खराबी आ जाने के कारण ही बुढ़ापे से संबंधित रोग इंसान को अपनी गिरफ्त में लेने लगते हैं। क्योंकि तब शरीर में उचित मात्रा में प्रतिपिंड नहीं बन पाते हैं। आनुवांशिक इंजीनियरी में हुई प्रगति के चलते ऐसी आशा की जा सकती है कि निकट भविष्य में इस काम्प्लेक्स को फिर से सक्रिय बनाना संभव हो सकेगा। तब बुढ़ापे को कुछ वर्षों के लिए टाला अवश्य जा सकेगा।

पश्चिमी देशों में हार्मोनों द्वारा भी 'अक्षय यौवन' प्राप्त करने के प्रयास बड़े जोरों पर है। ह्यूमन ग्रोथ हार्मोन के अलावा मेलाटोनिन तथा डी0एच0ई0ए0 डेप्रिनाइल जैसे हार्मोनों के प्रयोग पर भी कुछ शोध चल रहा है। उम्र बढ़ने के साथ मनुष्य के शरीर में ग्रोथ हार्मोन तथा डी0एच0ई0ए0 हार्मोन की कमी हो जाती है। तभी वृद्धावस्था की ओर उन्मुख कुछ लोगों पर कृत्रिम रूप से इन हार्मोनों की दिए जाने के प्रयोग विशेष रूप से अमेरिका में किए जा रहे हैं।

वृद्धावस्था को टालने या उस पर नियंत्रण पाने के सभी शोध अभी प्रायोगिक स्तर पर ही हैं। प्रयोगशाला में फल मक्खी (फ्रूट फ्लाई), गोल कृमि (राउंड वर्म) तथा चूहों आदि पर ही अभी ये प्रयोग किए गए हैं। बुढ़ापे के खिलाफ वैज्ञानिकों की जंग अभी काफी लम्बी लगती है। पर जरा वैज्ञानिक अपने शोध अध्ययन लगातार चलाए जा रहे हैं। हाल ही में इटली के मिलान स्थित 'यूरोपियन इंस्टीट्यूट आफ आंकोलॉजी' से जुड़े वैज्ञानिकों ने एक ऐसा जीन ढूँढ निकालने का दावा किया है जो बुढ़ापे को आमंत्रित कर व्यक्ति की मृत्यु का कारण बनता है। इन वैज्ञानिकों का कहना है कि इस जीन की सक्रियता से शरीर में बुढ़ापे के लक्षण प्रकट होते एवं पनपते हैं।

मिलान के वैज्ञानिकों द्वारा ढूँढे गए नए जीन को पी–66, एस. एच. पी. सी. नाम दिया गया है। प्रोफेसर पियर लुइगी पेलिक्की के नेतृत्व में काम कर रहे वैज्ञानिकों ने पहले कीटों और फिर चूहों पर अपने प्रयोग किए। पी–66 एस. एच. पी. सी. रहित नई कोशिका बना कर उसे एक चुहिया में संरोपित कर उसे फिर स्वाभाविक जनन क्रिया के लिए इन वैज्ञानिकों ने छोड़ दिया।

आश्चर्य था कि प्रजनन द्वारा उस चुहिया को जो नर और मादा चूहे उत्पन्न हुए उनमें पी–66 एस. एच. पी. सी. जीन पूरी तरह से नदारद पाया गया। इन चूहों का जीवन काल भी आम चूहों की अपेक्षा करीक पचास प्रतिशत तक बढ़ गया था। जहाँ आम चूहों का जीवन काल 24 महीने होता है वहीं इनका जीवन काल 35 महीनों के करीब पाया गया।

प्रोफेसर पेलिक्की का मानना है कि प्रयोगों को मनुष्यों में भी दोहराया जा सकेगा और इस तरह सन् 2020 तक मनुष्य की आयु कम से कम 35 फीसदी तक बढ़ाई जा सकेगी, यानी तब मनुष्य की औसत आयु बढ़कर 120 वर्ष हो जाएगी।

अमेरिका के 'नेशनल इंस्टीट्यूट आफ हेल्थ' से जुड़े वैज्ञानिकों ने भी हाल ही में एक ऐसे जीन की खोज की है जो शरीर में एक खास एंजाइम का निर्माण करता है। मेथियोनिन सल्फोक्साइड रिडक्टेज नामक यह एंजाइम आक्सीकारक पदार्थों द्वारा उत्पादित मुक्त सूत्रकों से कोशिकाओं द्वारा नष्ट होने से बचाता है। इन शोधकर्ताओं ने ऐसे चूहों का विकास किया जिसमें उल्लिखित एंजाइम को बनाने वाला जीन ही गायब था। इन चूहों का जीवन काल साधारण चूहों, जिनमें यह एंजाइम उत्पादक जीन मौजूद था, के मुकाबले 40 प्रतिशत कम पाया गया। इस शोध से जुड़े वैज्ञानिक जेकब मास्कोविट्ज का कहना है कि मेथियोनिन सल्फोक्साइड रिडक्टेज एंजाइम की स्तनधारियों के जीवन काल को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। लेकिन इस एंजाइम के बढ़ते असर का शरीर पर असल में क्या प्रभाव पड़ता है, इसका पता लगाने में अभी चार–पाँच वर्ष और लग जाएंगे।

खैर, बुढ़ापे के विरुद्ध वैज्ञानिकों की जंग तो पुरजोर जारी है। लेकिन इस बात से भला किसे इंकार हो सकता है कि चुस्त–तंदरुस्त बने रहने के लिए समुचित व्यायाम तथा पोषक तत्व युक्त संतुलित भोजन करना मनुष्य के लिए बहुत ही जरूरी है। साथ–साथ प्रदूषण से बचाव भी जरूरी है क्योंकि प्रदूषणयुक्त वातावरण मनुष्य की आयु को कम करता है।

विस्क्रोसिन यूनिवर्सिटी में आनुवांशिकी के प्रोफेसर टामस प्रोला ने रिचर्ड विनड्रक तथा अपने कुछ अन्य सहयोगियों के साथ मिल कर भोजन के असर को देखने के लिए चूहों पर कुछ प्रयोग किए। इन प्रयोगों द्वारा यह बात सामने आई कि पोषक तत्व युक्त संतुलित भोजन से कोशिकाओं के क्षय की प्रक्रिया धीमी होती है। कम कैलोरी तथा कम कोलेस्टेरोल वाले संतुलित भोजन में वानस्पतिक स्रोतों से प्राप्त प्रोटीन जैसे कि दाल, सोयाबीन आदि तथा प्रचुर मात्रा में फल एवं हरी सब्जियों का समावेश होना चाहिए।

योग भी दीर्घ जीवन का मार्ग प्रशस्त कर सकता है क्योंकि योग से मनुष्य संयमित होता है और संयमित जीवन दीर्घायु का आधार है। अष्टांग योग के अंग प्राणायाम के सिद्धांत के अनुसार मनुष्य दिन भर में 21600 बार साँस लेता एवं छोड़ता है। यदि इससे अधिक बार साँस लेगा तो उसकी आयु घटेगी और इससे कम बार साँस लेगा तो उसी अनुपात में उसकी आयु में वृद्धि रहेगी। प्राणायाम द्वारा साँस को नियमित कर उसका आवर्तन कम किया जा सकता है जिससे मनुष्य की आयु बढ़ती है। परन्तु योग को विज्ञान की कसौटी पर अभी कसा जाना बाकी है।

लम्बी आयु के लिए शरीर को प्रति–आक्सीकारकों की भी महती आवश्यकता होती है। दरअसल, हर कोशिका को आक्सीजन की जरूरत होती है ताकि वह एटीपी नामक ऊर्जा प्रदान करने वाले अणुओं का उत्पादन कर सके। आक्सीकरण की इस प्रक्रिया के दौरान मुक्त मूलकों की सृष्टि होती है। ये अणु आवेशित अवस्था में होते हैं और शरीर की कोशिकाओं पर आक्रमण कर उनमें मौजूद प्रोटीन, वसा,, डीएनए, आरएनए आदि को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं।।

ये मुक्त मूलक सामान्य वसीय कोशिका भित्तियों से क्रिया करके लिपिड पर आक्साइडों का निर्माण करते हैं। गौरतलब है कि हमारे लम्बे और स्वस्थ जीवन के लिए ये लिपिड पर आक्साइड विशेष रूप से हानिकारक

शेष पृष्ठ 21 पर

कैन्सर ग्रीवा : एक गम्भीर समस्या

डॉ. विनया पेंडसे

विश्व में प्रतिवर्ष 5 लाख कैन्सर ग्रीवा के नए प्रकरण होते हैं जिसमें से एक लाख सिर्फ भारतवर्ष में होते हैं। प्रति एक लाख जनसंख्या पर भारत में 30–40, ब्रिटेन में 10–12, संयुक्त राज्य अमेरिका में 5–7 कैन्सर ग्रीवा के मामले होते हैं। स्त्री जनन संस्थान के अन्य अंगों की तुलना में ग्रीवा में कैन्सर सबसे अधिक यानी लगभग 70 प्रतिशत होता है। ग्रीवा कैन्सर पर प्रकाश डालने से पहले ग्रीवा के विषय में कुछ जानकारी आवश्यक है।

ग्रीवा-रचना, क्रिया व परीक्षण

गर्भाशय का सबसे निचला भाग जिसका आकार डमरू के समान होता है उसे ग्रीवा यानि सरविक्स कहते हैं। यह स्त्री जनन संस्थान का अन्दरूनी अंग है। लगभग एक इन्च लम्बा मुख्यतया मांसपेशी ऊतक से बना हुआ यह अंग योनि के भीतर व उसके ऊपरी भाग में स्थित होता है। इसके मध्य में नली होती है जो ऊपर गर्भाशय गुहा में नीचे योनि मार्ग में खुलती है। योनि से लगे हुए ग्रीवा के भाग व नली छेद का एक सरल उपकरण द्वारा प्रकाश की सहायता से निरीक्षण व परीक्षण सम्भव है। इस उपकरण को योनि वीक्षक यानि वेजायनल स्पेक्युलम कहते हैं। महिलाओं में की जाने वाली जनन अंगों की जाँच में वीक्षक द्वारा योनिमार्गीय जाँच आवश्यक होती है व इसे पी. एस. यानि पर स्पेक्युलम कहते हैं। इसके बाद अंगुलियों द्वारा की जाने वाली योनिमार्गीय जाँच को पी. वी. यानि पर वेजायनम कहत हैं। पीएस व पीवी स्त्री रोग निदान हेतु की जाने वाली एक मौलिक व महत्त्वपूर्ण जाँच है। इसे चिकित्सक अथवा नर्स द्वारा गोपनीयता व निजीपन का ध्यान रखते हुए किया जाता है।

ग्रीवा का मुख्य कार्य गर्भाशय की सुरक्षा यानि इसे सतत् बन्द रखना व समय पर खोलना है। प्रसव क्रिया में ग्रीवा मुख पूरा खुलता है जिसके फलस्वरूप शिशु निष्कासित होता है यानि हम बाहर निकलते या जन्म लेते हैं। ग्रीवा व योनि से सतत् स्राव निकलता रहता है। जिसका लक्ष्य उस अंग को स्वच्छ परन्तु गीला रखना है ताकि सहवास, प्रसव इत्यादि आवश्यक क्रियाओं में सुविधा रहे।

ग्रीवा व ऊतक रचना

ग्रीवा पर उपकलीय आवरण होता है। यह उपकला दो प्रकार की होती है। ग्रीवा छेद के अन्दर यानि नली में यह स्तम्भाकार व छेद के बाहर चारों तरफ यह स्तरित शलकी प्रकार की होती है। स्तम्भाकार व शलकी कोशिकाओं की रचना में अन्तर होता है। छेद के अन्दर वाली स्तम्भाकार उपकला की गहराई में सूक्ष्म ग्रन्थियाँ होती हैं जिसका मुख्य कार्य स्राव निर्माण है। ग्रीवा छेद का क्षेत्र ऐसा भाग है जहाँ पर अन्दर की स्तम्भाकार व बाहर की स्तरित शलकी प्रकार की कोशिकाओं का मिलन होता है। यहाँ पर यह एक दूसरे में परिवर्तित होती रहती हैं इसलिए इस क्षेत्र को परिवर्तित क्षेत्र यानि ट्रान्सफोर्मेशन ज़ोन कहते हैं। उपकलीय कोशिकाओं का एक दूसरे में परिवर्तित होना एक विशिष्ट किन्तु संवेदनशील क्रिया होती है। कैन्सर उत्पत्ति में इस क्षेत्र व इस क्रिया का विशेष महत्त्व है।

कैन्सर क्या होता है ?

हमारे शरीर की सबसे छोटी यानि सूक्ष्मतम रचना व क्रियात्मक इकाई कोशिका होती है। इनका उत्पादन, परिपक्व होना, क्रिया व अन्त में नष्ट होना यह क्रमशः एक निश्चित प्रकार से आवश्यकता के अनुसार हर अंग में चलता रहता है। इसे कोशिकाओं का सामान्य व्यवहार कहते हैं। कैन्सर में कुछ ज्ञात व बहुत अज्ञात कारणों से यह सामान्य व्यवहार व क्रम गड़बड़ा जाता है। कुछ कोशिकाओं का एक अनियन्त्रित प्रकार से उत्पादन, अधिक संख्या, कम परिपक्वता, आदि प्रक्रियाएँ शुरू हो जाती हैं। कोशिका रचना व क्रिया में परिवर्तन आता है व यह कोशिकाएँ आतंककारियों के समान

आसपास घुसपैठ कर पहले उस क्षेत्र की व्यवस्था व बाद में उस क्षेत्र को ही नष्ट करती हैं। रक्त व लसिका संचार के माध्यम से यह सुदूर अंगों व गहराई तक पहुँच जाती है। इसी कारण उस कैन्सरग्रस्त अंग की शल्य क्रिया के बाद भी यह रोग दुबारा या दूसरे अंगों में उभरता है।

ग्रीवा में कैन्सर उत्पत्ति–एक लम्बा दौर

ग्रीवा का कैन्सर उसकी उपकला विशेषकर परिवर्तित क्षेत्र की उपकला की कोशिकाओं से उत्पन्न होने वाला रोग है। यह कैन्सर अचानक नहीं बनता है। उपकलीय कोशिकाओं में लम्बे समय तक धीरे धीरे होने वाले परिवर्तनों का अन्तिम पड़ाव है कैन्सर। यह दौर कुछ महीनों से कुछ वर्षों तक चल सकता है। इस दौर में कुछ परिवर्तन पहले तथा कुछ बाद में एक अनिश्चित प्रकार से आते हैं। आरम्भ में कुछ गिनीचुनी कोशिकाओं में यह परिवर्तन आता है। उनकी रचना व क्रम गड़बड़ाने लगता है। काफी लम्बे समय तक यह परिवर्तन उस उपकलीय क्षेत्र या परत में सीमित रहता है यानि यह कोशिकाएँ उस परत से बाहर निकलती हैं। परिवर्तन के इस दौर को प्रीकैन्सर अथवा संस्थानी कैन्सर कहते हैं। प्रीकैन्सर दशा का निदान व पूर्ण चिकित्सा सम्भव है। विकसित देशों में 30 वर्ष के पश्चात् हर महिला का इस कैन्सर की बचाव की दृष्टि से नियमित परीक्षण किया जाता है व प्रीकैन्सर दशा में ही कैन्सर को पकड़ा जाता है। उचित समय पर उसकी चिकित्सा की जाती है।

आज के सन्दर्भ में कैन्सर निदान का मुख्य लक्ष्य प्रीकैन्सर स्थिति में उसे पकड़ना यानि मालूम करना है।

प्रीकैन्सर दशा–लक्षण व निदान

प्रीकैन्सर दशा में कोई लक्षण हो या नहीं भी हो सकते हैं। यह लक्षण खास प्रकार के नहीं होते हैं। अधिकतर रोगियों में आम लक्षण जैसे असामान्य श्वेत स्राव, कमरदर्द, हल्का पेट दर्द इत्यादि हो सकते हैं। कुछ में सहवास के बाद रक्त का दाग दिखाई दे सकता है।

योनि वीक्षण जाँच में ग्रीवा का आकार सामान्य होता है परन्तु उस पर चीरकारी सूजन, जख्म यानि इरोजन, असामान्य स्राव इत्यादि होता है। कभी कभी ग्रीवा असामान्य व अस्वस्थ दिखाई देती है। ऐसा जख्म जिसे स्पर्श करते ही रक्त स्राव ही प्रीकैन्सर या कैन्सर दशा को दर्शाता है।

प्रीकैन्सर दशा के स्थाई निदान हेतु प्रयोगशालीय जाँचें आवश्यक हैं। पैप स्मियर, कोल्पोस्कोपी यानि ग्रीवादर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षण, बायोप्सी यानि विकृत दिखने वाले क्षेत्र का छोटा सा टुकड़ा उसका ऊतक व कोशिका परीक्षण इत्यादि आवश्यक जाँचें हैं। पैप स्मियर या पैप टेस्ट में योनि स्राव का नमूना लेकर उसे विशेष प्रकार से तैयार कर सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षण किया जाता है क्योंकि उसमें ग्रीवा व योनि की उपकला से झड़ी हुई कोशिकाएँ होती हैं। यह कोशिकाएँ सामान्य या असामान्य हैं, अगर असामान्य है तब इनकी विकृति किस प्रकार की है, इनकी रचना में कैन्सर या प्रीकैन्सर दशा क परिवर्तन हैं या नहीं, अगर है तब किस हद या श्रेणी के हैं इत्यादि देखा जाता है। इन परिवर्तनों के आधार पर पैप स्मियर को चार या पाँच श्रेणी में विभाजित किया जाता है। तृतीय श्रेणी व उच्चतर श्रेणी के स्मियर को प्रीकैन्सर दशा में लिया जाता है।

बचाव सम्भव

कैन्सर ग्रीवा से बचाव तभी सम्भव है जब हम ग्रीवा पर होने वाले कैन्सरपूर्व परिवर्तन को समय पर पहचान कर उसका उपचार करें। जिस महिला में यह परिवर्तन हो रहा है वह स्वयं इसे पहचान नहीं सकती है क्योंकि ग्रीवा शरीर के अन्दर स्थित है। ऐसे में एकमात्र उपाय समय समय पर योनि मार्गीय जाँच है। कैन्सर ग्रीवा प्रकरण की औसतन आयु लगभग 30 वर्ष है। इसलिए इस आयु के आस पास अगर किसी महिला को असामान्य श्वेत स्राव, कमर दर्द, मासिक के अतिरिक्त रक्त का दाग लगना इत्यादि की शिकायत है या अन्यथा भी समय समय पर स्त्री रोग विशेषज्ञ द्वारा जाँच करवानी चाहिए। चिकित्सा सलाह के अनुसार पैप स्मियर व अन्य जाँचें, फालोअप हेतु जाना, चिकित्सा करवाना आवश्यक है।

ग्रीवा पर होने वाली सूजन, जख्म इत्यादि अक्सर संक्रमण के कारण होते हैं। ऐसे में औषधियाँ, योनि में रखने वाली गोलियाँ, जख्म को बिजली, रसायन या गैस से नष्ट करना (कॉटरीकरण) इत्यादि की सलाह दी जाती है। कुछ विकृतियाँ कभी कभी समय के साथ अपने आप ठीक हो जाती हैं। कुछ में कैन्सर की दिशा

शेष पृष्ठ 32 पर.......

स्वास्थ्य

लिवर को कैसे स्वस्थ रखें

डॉ. जे.एल. अग्रवाल

लिवर (यकृत, जिगर) शरीर की सबसे बडी ग्रन्थि है, साथ ही यह शरीर की रासायनिक प्रयोगशाला भी कही जा सकती है। लिवर की कोशिकायें अनेकानेक रासायनिक क्रियायें करती हैं जिनके द्वारा शरीर के लिये आवश्यक तत्त्वों, एन्जाइम का निर्माण होता है। यहाँ पर पित्त बनता है जो कि आँतो में पहुँच कर वसा को पचाने और अवशोषण में मदद करता है।

लिवर में शरीर में बने हानिकारक तत्वों को निष्क्रिय कर दिया जाता है, जहरों, दवाओं को भी। रक्त में थक्का बनाने और घोलने के लिये ज्यादातर तत्वों का निर्माण कार्य भी लिवर में ही होता है। यहाँ पर कुछ विटामिनों का निर्माण होता है, कुछ का संग्रह। रक्त कोशिकायें बन सकती हैं। लिवर रक्त में गलूकोज के स्तर को नियमित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यहाँ पर रोग प्रतिरोधक प्रोटीन का निर्माण कार्य भी होता है। लिवर शरीर के आन्तरिक रासायनिक वातावरण को सामान्य बनाये रखने के लिये अति आवश्यक है।

वयस्क व्यक्ति में लिवर करीब 1.5 किग्रा का होता है। यह पेट के ऊपरी हिस्से के दायें और मध्य भाग में स्थित होता है। आँतों से आ रहा सारा का सारा रक्त पहले लिवर में पहुँचता है और उसके बाद हृदय में। लिवर बगैर जीवन संभव नहीं है। स्वस्थ शरीर के लिये स्वस्थ लिवर होना जरूरी है। वैसे.तो लिवर में स्वयं को स्वस्थ बनाये रखने और पुनर्निर्माण की अपार क्षमता होती है पर फिर भी अनेक रोग इसे क्षतिग्रस्त कर सकते हैं। जब लिवर कार्य करना बंद कर देता है या सुचारु ढंग से कार्य नहीं कर पाता तो यह दशा लिवर फेल्योर कहलाती है। यदि फेल्योर के शुरू में ही उपचार नहीं किया गया तो मौत का कारण हो सकती है। लिवर फेल्योर होने पर शरीर के रासायनिक वातावरण में परिवर्तन होने से मस्तिष्क, स्नायु, गुर्दे, आँतें, हृदय, रक्त इत्यादि अंग भी क्षतिग्रस्त होने लगते हैं। रक्त में शर्करा का स्तर अनियन्त्रित हो जाता है। लिवर सूजन (हिपेटाइटिस), पीलिया, सिरोसिस, मदिरा पान, औषधियों, रसायनों के दुष्प्रभाव, कैंसर, विभिन्न मेटाबोलिक रोगों के कारण क्षतिग्रस्त हो सकता है।

वायरल हेपिटाइटिस नामक रोग लिवर में वायरस जीवाणुओं के संक्रमण से होता है। इसमें से सबसे प्रमुख है हिपेटाइटिस 'ए' और 'इ' से संक्रमण प्रदूषित भोजन, जल या पेय के सेवन से होता है जबकि हिपेटाइटिस 'बी', 'डी', 'सी' से संक्रमण संक्रमित सिरिंज नीडिल से इन्जेक्शन लगाने, औजारों से आपरेशन करने, प्रदूषित रक्त चढ़ने, संक्रमित मरीज से यौन सम्बन्ध या संक्रमित माँ से शिशु में फैल सकता है।

इन मरीजों में मुख्य लक्षण हैं– अचानक भूख न लगना, मितली, उल्टियाँ, हल्का ज्वर, पेट के ऊपरी हिस्से में दर्द, बदन दर्द, खुजली, स्वाद कसैला होना, आँखों, त्वचा एवं पेशाब का रंग पीला हो जाना। रोग ग्रसित मरीज अधिकतर उचित देखभाल, पूर्णतः परहेज से पूर्णतः स्वस्थ हो जाते हैं, पर कुछ रोगियों का लिवर फेल हो सकता है। वायरल हेपिटाइटिस के अनेक मरीजों में धीरे–धीरे लिवर क्षतिग्रस्त होता रहता है और अन्त में लिवर फेल्योर हो सकता है। इनमें लिवर कैंसर होने की सम्भावना ज्यादा होती है। अनुमान है कि प्रतिवर्ष वायरल हेपिटाइटिस के कारण करीब 2–3 लाख मौतें हो जाती हैं।

यदि मरीज का लिवर फेल्योर होने लगता है तो रोगी का व्यवहार और स्वभाव बदलने लगता है, कुछ मरीज चिल्लाने लगते हैं या बिस्तर से उठ कर भागते हैं, इनके हाथ पैर में कंपन हो सकता है तथा श्वाँस तीव्रगति से और अनियन्त्रित हो जाती है। मरीज में बेहोशी मस्तिष्क पर अमोनिया के प्रभाव के कारण होती है, लिवर फेल्योर होने की दशा में झटके आ सकते हैं, आँतों में रक्त स्राव हो सकता है जिसके कारण रक्त की उल्टियाँ या मल के

साथ खून निकलने से मल का रंग काला हो सकता है। यदि लिवर फेल्योर के कारण गुर्दे क्षतिग्रस्त हो जाते हैं तो मूत्र की मात्रा कम हो जाती है, पेशाब में खून आ सकता है। वायरल हेपिटाइटिस रोग गर्भवती महिलाओं में ज्यादा गम्भीर होता है। इसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर भी पड़ता है।

हिपेटाइटिस 'ए' रोग से बचाव प्रदूषित भोजन, पेयजल के न सेवन करने से हो सकता है। हिपेटाइटिस 'बी' से बचाव के लिये सदैव विसंक्रमित सिरिंज से इन्जेक्शन लगवायें, रक्त चढ़वाने से पूर्व रक्त में इसकी जाँच जरूरी है। सुरक्षित यौन सम्बन्ध बनायें। हिपेटाइटिस 'ए' और 'बी' के टीके उपलब्ध हैं। हर व्यक्ति को हिपेटाइटिस 'बी' का टीका लगवाना चाहिये। यदि आसपास रोग का भय है तो हिपेटाइटिस 'ए' का टीका लगवायें।

लिवर सिरोसिस

यह लिवर का पेचीदा, दीर्घकालीन रोग है। रोग में लिवर की कोशिकायें नष्ट होने लगती हैं और लिवर सिकुड़ कर कड़ा हो जाता है। यह अनेक कारणों से हो सकता है पर प्रमुख कारण लम्बे समय तक शराब सेवन और वायरल हिपेटाइटिस से संक्रमण है। देश के बच्चों में एक विशेष प्रकार का सिरासिस रोग हो सकता है जो अनुमानानुसार लम्बे समय तक पीतल के बर्तनों में उबला दूध पिलाने से होता है क्योंकि इन बच्चो के लिवर में कॉपर के कण जमा होने लगते हैं।

रोगियों के लिवर की कोशिकायें धीरे–धीरे नष्ट होने लगती हैं। रोग की शुरुआत में कोई विशिष्ट लक्षण नहीं होते पर इनको भूख कम लगना, जी मिचलाना, वजन कम होना, लगातार कमजोरी रहना जैसी समस्यायें हो सकती हैं। बाद में लिवर फेल्योर के लक्षण प्रकट होते है। पेट की पेरीरोनियम झिल्ली में पानी इकट्ठा हो जाता है, पेट फूल जाता है, खून की उल्टियाँ हो सकती हैं, मल काला होता है, या वसा का अवशोषण न होने से चिकना होता है। अन्त में मरीज बेहोश हो जाता है और मृत्यु हो जाती है। लिवर सिरोसिस से बचाव के लिये शराब का सेवन न करें, या नियन्त्रित मात्रा में यदा कदा करें। हिपेटाइटिस रोगों से बचाव का प्रयत्न करें, सन्तुलित मात्रा में स्वच्छ भोजन करें। रसायनों तथा दवाओं का प्रयोग निर्देशानुसार ही करें।

शराब के कारण लिवर रोग

शराब के अत्यधिक मात्रा में सेवन से लिवर पर घातक प्रभाव हो सकते हैं। शराब के दुष्प्रभाव से फैटी लिवर, अल्कोहलिक हेपिटाइटिस, सिरोसिस रोग हो सकता है। शराब के सेवन से लिवर कैंसर होने की संभावना कई गुना बढ़ जाती है। यदि वायरल संक्रमण, दवाओं के दुष्प्रभाव या अन्य कारणों से लिवर पहले से ही क्षतिग्रस्त है तो अल्कोहलिक हिपेटाइटिस, सिरोसिस होने की प्रबल सम्भावना रहती है। शराब पीने से अचानक रक्त में ग्लूकोज की कमी हो सकती है जिससे मरीज बेहोश हो सकता है। शराब न पियें, यदि पीना मजबूरी है तो यदा कदा नियन्त्रित मात्रा में पियें।

अन्य रोग

दवायें, रसायन, धातुयें जैसे पारा, लेड, आर्सेनिक, कैडमियम, निकिल, कुछ विटामिन की कमी और कुछ विटामिन जैसे विटामिन ए की अधिकता, फफूँदों से संक्रमण से भी लिवर क्षतिग्रस्त हो सकता है।

लिवर कैंसर भी लिवर रोगों का महत्वपूर्ण कारण है। प्राथमिक लिवर कैंसर शराबप्रेमियों या प्रदूषित भोजन के सेवन से होने की प्रबल सम्भावना रहती है। अनेक अन्य रोगों का कैंसर भी यदि लिवर तक पहुँच कर बढ़ता है तो जानलेवा हो जाता है।

लिवर को रोगों से कैसे बचायें

वायरल हिपेटाइटिस 'ए' संक्रामक रोग है जो कि विशेषकर गर्मी के मौसम में तेजी से फैलता है। प्रदूषित जल और भोजन का सेवन न करें। पानी प्रदूषित होने की शंका होने पर या तो उसको स्वयं उबाल कर पियें, या क्लोरीन की गोलियों से विसंक्रमित करें। खाद्य पदार्थों को मक्खियों से बचायें। खुले कटे फलों, मिठाइयों, चाट, पेय एवं अन्य पदार्थों का सेवन न करें। भोजन करने से पहले और मल त्याग करने के बाद साबुन से अच्छी तरह हाथ साफ करें। हिपेटाइटिस 'बी' से बचाव के लिये सदैव विसंक्रमित सिरिंज से इन्जेक्शन लगवायें। अजनबी से यौन सम्बन्धों से बचें और कन्डोम का प्रयोग करें। अब दोनों ही रोगों से बचाव के लिये टीका उपलब्ध है। इनके 3 इन्जेक्शन लगवाने से रोग से बचाव संभव है। हर व्यक्ति को हिपेटाइटिस 'बी' का टीका अवश्य लगवाना चाहिये।

लिवर सिरोसिस घातक रोग है जिसका उपचार

उपलब्ध नहीं है। शराब का सेवन न करें या फिर नियन्त्रित मात्रा में (60 मिली0 से कम) यदा कदा करें। हिपेटाइटिस रोग होने से कम से कम एक वर्ष तक शराब को हाथ न लगायें। लिवर सिरोसिस बचाव के लिये हिपेटाइटिस से बचाव के उपाय करें। संतुलित, स्वच्छ भोजन करें। मनमर्जी से दवाओं का सेवन न करें। दीर्घकालीन इलाज कराते समय यदि किसी दवा के लिवर पर दुष्प्रभावों का ज्ञान है तो नियमित अंतराल में लिवर की जाँच करवाते रहें।

संतुलित एवं, पर्याप्त मात्रा में भोजन करें जिससे समुचित मात्रा में सब पोषक तत्व मौजूद हों। अत्यधिक गरिष्ठ, वसा, चर्बी युक्त भोजन भी लिवर को क्षतिग्रस्त कर सकता है। अतः भोजन में वसा की मात्रा पर नियन्त्रण रखें। फफूँद लगे भोजन के सेवन से फफूँदों से निंकला जहर लिवर को क्षतिग्रस्त कर सकता है, साथ ही यह लिवर कैंसर कर सकता है। अतः फफूँद लगा भोजन न करें।

लिवर में अपने को स्वस्थ और कार्यशील रखने की अपार क्षमता होती है और आसानी से यह क्षतिग्रस्त नहीं होता है, पर इसके सम्बन्ध में जनसाधारण में अनेक भ्रान्तियाँ व्याप्त हैं। अक्सर माँ बच्चों को लेकर डाक्टर से सम्पर्क करती हैं कि बच्चों का लिवर खराब है, वे इसी कारण कमजोर हैं उन्हें भूख नहीं लगती है। नीमहकीम डाक्टर इनको बेवकूफ बनाते हैं और तरह तरह के टॉनिक और दवायें देते हैं। बच्चों में बराबर डायरिया, उल्टी अस्वच्छता के कारण होती है, न कि लिवर खराब होने से, एवं बच्चो में कुपोषण से वजन नहीं बढ़ता और लिवर का आकार थोड़ा बढ़ जाता है, और इसके कार्यों में कुछ गड़बड़ी आ सकती है, पर उपचार करने से लिवर पुनः अपना कार्य सुचारु रूप से करने लगता है। इन बच्चों को संतुलित भोजन की समुचित मात्रा में जरूरत होती है न कि दवाइयों की।

वयस्कों में भी कमजोरी होना, वजन कम रहना या कम हो जाने का सम्बन्ध भी लिवर खराब होने से जोड़ा जाता है। ये लक्षण लिवर रोगों में भी हो सकते हैं पर हर उपरोक्त लक्षणों के मरीजों का लिवर खराब हो यह जरूरी नहीं है। यही लक्षण अनेक अन्य रोगों के कारण भी हो सकते हैं, अतः रोग का जाँचों द्वारा मूल कारण जान कर उपचार जरूरी है।

लिवर की अधिकांश बीमारियों का अभी तक कोई कारगर उपचार उपलब्ध नहीं है और बचाव ही लिवर को स्वस्थ रखने का सर्वोत्तम उपाय है। लिवर को स्वस्थ रखने के लिये संतुलित भोजन समुचित मात्रा में करें,, भोजन, जल और पेय पदार्थों की स्वच्छता के प्रति जागरूक रहें। शराब या नशीली दवाओं का सेवन न करें। दवाओं का सेवन मनमर्जी से नहीं, बल्कि केवल डाक्टर के निर्देशानुसार ही करें।

लिवर फेल्योर होने की दशा में इसका प्रत्यारोपण भी संभव है। यह तकनीक अब देश के कुछ विशिष्ट हास्पिटलों में उपलब्ध है, पर यह बहुत ही मँहगा उपाय है। क्यों न पहले से ही बचाव के उपाय करें जिससे कष्टों से बचें और स्वस्थ, निरोगी जीवन व्यतीत कर सकें।

मेडिकल कालेज
कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश)
176 001

इनसेट 3–सी का सफल प्रक्षेपण

24 जनवरी 2002 को प्रातः फ्रेंच गुयाना के कोरू प्रक्षेपण स्थल से उपग्रह प्रक्षेपण वाहन एरियान 4 ने पृथ्वी से ऊपर उठने के बाद 2750 किग्रा. भार वाले भारतीय उपग्रह इनसेट 3–सी को नियत कक्षा में पहुँचा दिया। इस उपग्रह की लागत 250 करोड़ रू0 के लगभग है। अनुमान है कि यह 12 वर्षों तक अपनी कक्षा में कार्य करेगा तथा पुराने उपग्रह इनसेट 2–सी का स्थान लेगा। इस उपग्रह के माध्यम से दूर संचार, प्रसारण, व्यावसायिक संचार तथा मोबाइल सेवाओं को नया आयाम मिलेगा।

बच्चों को भी होता है कैंसर

✍ डॉ. गौरी कपूर

बड़ों की तुलना में बच्चों को बहुत कम कैंसर होता है। दुनिया में कैंसर के मरीजों में से सिर्फ पाँच प्रतिशत ही बच्चे हैं, लेकिन चूँकि बच्चों की उम्र बहुत कम होती है और उनके सामने पूरी जिंदगी होती है, इसलिए बच्चों के कैंसर को गंभीरता से लिया जाना चाहिए।

कैंसर किसी भी उम्र के बच्चे को हो सकता है, फिर भी एक साल से कम उम्र के बच्चों को कैंसर बहुत कम होता है। बच्चों में पैदाइशी कैंसर भी बहुत कम होता है। बच्चों में कैंसर की पहचान शुरुआती अवस्था में ही हो जाने और उनका नियमित इलाज कराने पर इसे समूल नष्ट करना संभव होता है। न्यूरोप्लास्टोमा नामक कैंसर का पता एक साल से कम उम्र में ही चल जाने पर इसके ठीक होने की संभावना 90 प्रतिशत से भी अधिक होती है, लेकिन बाकी किस्म के कैंसर शरीर में बहुत जल्दी फैल जाते हैं, इसलिए इनका इलाज थोड़ कठिन होता है, खासकर पैदाइशी कैंसर का इलाज तो बहुत ही मुश्किल होता है। बच्चों को कैंसर को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जाता है– रक्त कैंसर (ब्लड कैंसर) और ठोस भागों का कैंसर (सॉलिड कैंसर)। बच्चों में 30–40 प्रतिशत कैंसर के मामले रक्त कैंसर के होते हैं। रक्त कैंसर में बच्चों में खून की कमी, कमजोरी, रक्त स्राव, बुखार, हड्डियो और जोड़ों में दर्द, तिल्ली और जिगर के बढ़ने, गर्दन में गिल्टियाँ जैसे लक्षण प्रकट होते हैं। अगर किसी बच्चे को लंबे समय से बुखार आ रहा हो और बुखार के कारणों का पता नहीं चल पा रहा हो, कमजोरी और अनीमीया हो, जिगर और तिल्ली में वृद्धि हो रही हो, साथ ही बच्चे के गले में गिल्टियाँ भी हों तो रक्त कैंसर की संभावना हो सकती है। ऐसी स्थिति में बच्चे को जल्द से जल्द किसी बाल विशेषज्ञ को दिखाकर रक्त कैंसर की जाँच करानी चाहिए क्योंकि इस अवस्था में बीमारी का पता चल जाने पर इसका इलाज संभव होता है।

बच्चों में रक्त कैंसर के बाद ठोस अंगों के कैंसर में मस्तिष्क की रसौली (ब्रेन ट्यूमर) के अलावा मांसपेशियों कैंसर (रैब्डोमायोसरकोमा) और इविंग सरकोमा, गुर्दे का ट्यूमर (विलम्स ट्यूमर), जिगर का ट्यूमर (हिपैटोब्लास्टोमा), नेत्र कैंसर (रिटैनोब्लास्टोमा), सॉफ्ट टिश्यू सरकोमा और जर्म्स सेल ट्यूमर भी हो सकते हैं। बच्चे की आँख में सफेद चमक नजर आती है और नजर कमजोर होने की वजह से आँख टेढ़ी हो जाती है। रक्त कैंसर का पता लगाने के लिए दो तरह की जाँच की जाती है– सीबीसी या होमोग्राम जाँच और अस्थि मज्जा की जाँच के लिए कूल्हे ही हड्डी में सुई डालकर एक सी.सी. अस्थि मज्जा निकालकर माइक्रोस्कोप से उसकी जाँच की जाती है।

अंगों के कैंसर में शरीर के किसी भी हिस्से में गिल्टी यह गाँठ हो सकती है। यह गाँठ आमतौर पर बाहों, टांगों, गर्दन, पेट (जिगर) इत्यादि में हो सकती है। पेट की गाँठ के कारण पेट फूल जाता है और मल–मूत्र त्यागने में तकलीफ हो सकती है, साथ ही साथ रोगी को कमजोरी महसूस हो सकती है। गाँठ की जाँच के लिए बायोप्सी करानी पड़ती है। इसके तहत रोगी के शरीर में सूजन वाले स्थान से एक टुकड़ा लेकर स्ट्रेन करके माइक्रोस्कोप में देखने से कैंसर का पता चल जाता है। इस जाँच में यह भी पता चल जाता है कि यह किस प्रकार का कैंसर है। चूँकि रक्त कैंसर या लिम्फ ग्लैंड से शरीर के दूसरे हिस्से में भी फैल सकता है, जैसे कि फेफड़ा, जिगर, हड्डी इत्यादि। इसलिए कैंसर की पुष्टि होने पर कैंसर ग्रस्त स्थान के अलावा शरीर के दूसरे अंगों में भी कैंसर की जाँच की जाती है। शुरुआती अवस्था में कैंसर का पता चलने पर इसका इलाज काफी हद तक संभव है, लेकिन देर होने पर यह लाइलाज हो सकता है। इसके लिए आम तौर पर कीमोथेरेपी, रेडियेशन थेरेपी और सर्जरी का सहारा लिया जाता है। रक्त कैंसर में सर्जरी से कोई फायदा नहीं होता इसलिए इसमें केवल कीमोथेरेपी का ही इस्तेमाल किया जाता है। जबकि अंगों के कैंसर में तीनों का इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन यह कैंसर की अवस्था पर निर्भर करता है।

विभिन्न अंगों के कैंसर के इलाज से पहले

उसकी अवस्था का पता लगाया जाता है, उसके बाद ही यह निर्णय लिया जाता है कि पहले सर्जरी करनी है या कीमोथेरेपी। इसके अलावा हरेक कैंसर के इलाज में भी थोड़ा अंतर होता है। कुछ रोगियों में पहले सर्जरी की जाती है जबकि कुछ में कीमोथेरेपी के बाद सर्जरी की जाती है। यह निर्णय डाक्टर ही कर सकता है। कीमोथेरेपी देना हर हाल में जरूरी होता है, क्योंकि सर्जरी के बाद भी और कुछ कीटाणु रह जाते हैं जो नजर नहीं आते हैं और इसके लिए कीमोथेरेपी दी जाती है। कीमोथेरेपी से शरीर के हर हिस्से में दवा चली जाती है जबकि सर्जरी एक ही जगह की जा सकती है और रेडियेशन भी एक ही जगह दिया जा सकता है। कैंसर की प्रारंभिक अवस्था में तो सर्जरी से बहुत लाभ होता है और बीमारी के जड़ से ठीक होने की संभावना भी अधिक होती है। लेकिन कैंसर की गंभीर अवस्था में सर्जरी से अधिक लाभ नहीं होता है और बीमारी के ठीक होने की संभावना भी कम होती है।

कैंसर की सर्जरी में लिम्ब सैलवेज कंजरवेटिव सर्जरी का सहारा लिया जाता है। इसमें रोगी को पहले कीमोथेरेपी दी जाती है ताकि ट्यूमर थोड़ा सिकुड़ जाए और फिर इस तरह से आपरेशन किया जाता है कि उस अंग को काटना न पड़े और वह अंग सही तरीके से काम करता रहे। नेत्र कैंसर के आपरेशन में लेजर का भी इस्तेमाल किया जाता है ताकि बच्चे की आँख न निकालनी पड़े, लेकिन यह तभी संभव है जब इसकी पहचान शुरुआती अवस्था में ही हो जाए।

रक्त के कैंसर में सिर्फ कीमोथेरेपी का ही सहारा लिया जाता है लेकिन रक्त कैंसर के गंभीर रोगियों में अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण (बोन मैरो ट्रांसप्लांट) भी किया जा सकता है। इसमें रोगी को पहले कीमोथेरेपी की अधिक मात्रा देकर उसकी कैंसर ग्रस्त अस्थि मज्जा के एक हिस्से को खत्म कर दिया जाता है उसे माइलो एब्लेटिव कीमोथेरेपी कहते हैं। उसके बाद रोगी के जिस भाई या बहन से उसकी अस्थि मज्जा मिलती हो, उसकी अस्थि मज्जा निकालकर रोगी बच्चे में प्रत्यारोपित किया जाता है। ऐसा करने से कैंसरग्रस्त अस्थि मज्जा की अपनी जीन खत्म हो जाती है। अस्थि मज्जा प्रत्यारोपण के बाद जो अस्थि मज्जा बच्चे में आ जाती है वह कैंसर ग्रस्त न होकर स्वस्थ होती है, क्योंकि वह उसकी अपनी अस्थि मज्जा न होकर उसके भाई या बहन की स्वस्थ अस्थि मज्जा होती है। लेकिन इस तकनीक का इस्तेमाल सिर्फ विशेषज्ञ को ही करना चाहिए। बच्चों में कैंसर के इलाज के दौरान इस बात का ख्याल रखना जरूरी होता है कि इस इलाज से बच्चे की मानसिक स्थिति प्रभावित न हो। इसलिए अधिकतर कैंसर असपतालों में बच्चों को कीमोथेरेपी प्ले रूम में दी जाती है।

हमारे देश में हर साल तकरीबन 40 हजार बच्चों को कैंसर होता है जिसमें 10–12 हजार बच्चों को रक्त कैंसर होता है। कैंसर से लड़के और लड़कियाँ करीब–करीब बराबर ही प्रभावित होते हैं, लेकिन लड़कों की तुलना में लड़कियों में कैंसर का इलाज ज्यादा प्रभावी और आसान होता है। इसका कारण यह माना जाता है कि लड़कियों की तुलना में लड़कों में ज्यादा कमजोरी और संक्रमण होता है, साथ ही उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम होती है।

बच्चों के साथ–साथ बड़ों में भी कैंसर के कारण का अभी तक सही–सही पता नहीं चल पाया है। कुछ लोग इसे आनुवांशिक मानते हैं, लेकिन विभिन्न अनुसंधानों से साबित होता है कि अधिकतर कैंसर आनुवांशिक नहीं होते, बल्कि जिस परिवार में जीन में खराबी होती है, उस परिवार में कैंसर वंशानुगत हो सकता है। ऐसे परिवार में अगर माँ को 45 से कम उम्र में स्तन कैंसर हुआ तो बच्चों में कैंसर हो सकता है।

पौष्टिक आहार लेने से बच्चों और बड़ों में कैंसर की संभावना कम हो जाती है। लेकिन अत्यधिक वसा युक्त आहार लेने, धूम्रपान करने, शराब पीने, हरी सब्जियाँ आदि कम खाने और पौष्टिक आहार नहीं लेने पर कैंसर होने का खतरा बढ़ जाता है। कीटनाशकों तथा बेंजीन के संपर्क में अधिक रहने से भी कैंसर का खतरा काफी बढ़ जाता है। प्रदूषित वातावरण भी कैंसर के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है।

कैंसर रोग होने पर रोगी की प्रतिरोधक शक्ति कम हो जाती है, और उसे संक्रमण होने की अधिक संभावना होती है। इसलिए कैंसर के इलाज के दौरान बहुत सावधानी बरतने की जरूरत होती है। उस दौरान बाहर भोजन नहीं करना चाहिए और भीड़–भाड़ वाली जगहों पर नहीं जाना चाहिए। पौष्टिक आहार भरपूर मात्रा में लेना चाहिए। हालाँकि कैंसर के दौरान खाने की रुचि कम हो जाती है लेकिन फिर भी रोगी को भरपूर आहार लेना चाहिए, क्योंकि शारीरिक रूप से मजबूत होने पर भी दवा का अधिक प्रभाव होता है।

– साभार

आवश्यकता आयोडीन की

✍ डॉ. अरूण आर्य

कूरटोइस ने 1811 में समुद्री वनस्पतियों में आयोडीन की खोज की। यह हैलोजन समूह का प्रमुख तत्व है। फ्लोरीन, क्लोरीन, ब्रोमीन, आयोडीन एवं रेडियोधर्मी तत्व एस्टाटाइन हैलोजन कहलाते हैं। ग्रीक शब्द हेलोस का अर्थ है– लवण उत्पादक। क्लोरीन, ब्रोमीन एवं आयोडीन के लवण समुद्री पानी में घुले हुए पाए जाते हैं।

आयोडीन चमकदार गहरे बैंगनी अथवा काले रंग का ठोस तत्व है जो गर्म करने पर ऊर्ध्वपातित होकर बैंगनी रंग की गैस में बदल जाता है। दवाओं के रूप में इसकी उपस्थिति टिंक्चर आयोडीन, आयेडेक्स, आयोडोफार्म एवं कुछ आयोडाइडों में महसूस की जाती है। प्रयोगशालाओं में स्टार्च की उपस्थिति ज्ञात करने हेतु इसका प्रयोग सूचक के रूप में होता है तो वसा में असंतृप्त वसा अम्लों को आयोडीन संख्या से व्यक्त किया जाता है। हम प्रतिदिन आयोडाइज्ड नमक में इसका सेवन करते हैं। पौधों हेतु खाद के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है, तो मुर्गियों को इसे आहार में देने से अंडों की संख्या में वृद्धि होती है। हमारे भोजन का यह महत्वपूर्ण अंग है। इसे सूक्ष्मपोषक तत्वों की श्रेणी में रखा जाता है। इसकी कमी से मनुष्यों में घेंघा रोग उत्पन्न होता है।

सभी ज्ञात हैलोजनों में से आयोडीन सबसे कम पाया जाने वाला तत्व है। प्राचीन काल में हमारी वायुमण्डलीय गैसों में आयोडीन विद्यमान था, जो कि पृथ्वी के ठंडा होने पर पानी में विलेयमान हो गया। फालेनबर्ग (1927) ने आग्नेय एवं अवसादी शैलों में आयोडीन की उपस्थिति ज्ञात की। मैंग्मेटिक सल्फाइड चट्टानों में इसकी मात्रा 0.15 से 0.35 ग्राम प्रति टन पाई गई। यह न्यूजीलैंड की मिट्टी में सबसे कम 0.7 ppm फ्रांस में 16 ppm, रूस में 24 ppm और जापान की मिट्टी में सबसे अधिक 0.49 से 63 ppm मात्रा में पाया जाता है। मिट्टी में आयोडीन की मात्रा उसकी चट्टानों से सात गुना अधिक होती है। कुछ जल स्रोतों में इसकी मात्रा 300 ppm तक आँकी गई है। समुद्री पानी में इसकी मात्रा 0.03 ग्राम प्रति टन है जो समुद्र में लवणों की मात्रा में वृद्धि के साथ–साथ बढ़ती जाती है।

पौधों के लिए आवश्यक आयोडीन

समुद्री वनस्पतियों में आयोडीन अलग–अलग मात्राओं में पाया जाता है। यूरोप में कैस्पियन समुद्र में पाए जाने वाले डायटमों (एक शैवाल) में इसकी मात्रा 620 ppm पाई गई और स्पन्ज (समुद्री पशु) में इसकी मात्रा 1000 ppm पाई गई। समुद्री मछलियों में इसकी मात्रा 1 से 30 ppm रहती है।

पौधे अपनी आवश्यकता का 60 प्रतिशत आयोडीन वायु से ग्रहण करते हैं। शैकले एवं कथबेर्ट (1967)ने देखा है कि आलू की पत्तियों में प्रवेश करले वाली वायु में कार्बन डाइ आक्साइड तथा आयोडीन का अनुपात समान होता है। यदि एक एकड़ में 1000 कि ग्राम आलू पैदा होता है तो पत्तियों से 0.6 ग्राम आयोडीन अन्दर जाएगा और स्टार्च में संग्रहित होगा। आलू में इसकी मात्रा 3 ppm ज्ञात की गई है।

वैज्ञानिकों ने पौधों में जब रेडियोऐक्टिव आयोडाइड दिया तो जौ एवं मूँग में आयोडाइड डाई आयोडाइडों टाइरोसीन के रूप में संग्रहीत हुआ। बहुत से समुद्री भूरे शैवाल एक विशेष एन्जाइम आयोडाइड आक्सीडेज पैदा करते हैं जो आयोडाइड को आयोडीन में परिवर्तित करता है। इस प्रकार से शैवाल प्रचुर मात्रा में आयोडीन संग्रहित कर लेते हैं। पौधों में आयोडेड की अपेक्षा आयोडाइड रूप में आयोडीन की अधिकता से पौधों में हरे रंग का धीरे धीरे ह्रास होने लगता है उनकी पत्तियों के किनारे सूखने लगते हैं और अन्त में पत्तियाँ पूरी तरह से सूखने लगती हैं। नवीन पर्णों की अपेक्षा पुरानी पत्तियों में इसका प्रभाव पहले देखा जा सकता है।

आजकल आयोडीन बढ़ाने हेतु खाद की जगह

शैवाल का उपयोग किया जा रहा है। अन्डरवुड (1966) ने पाया कि जानवरों में आयोडीन की कमी को उनके चारे में आयोडीन की मात्रा बढ़ा कर पूरा कर लिया जा सकता है। पोटैशियम आयोडाइड एवं चिली नाइट्रेट ($NaNO_3$) को घास के मैदानों में छिड़क कर आयोडीन की मात्रा को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है।

विभिन्न वनस्पतियों में आयोडीन की उपस्थिति

पौधों का समूह	पौधों की प्रजातियाँ	आयोडीन की मात्रा ppm (प्रति दस लाख में)
शैवाल	वाउचेरिया प्र0	3.0
	सारगासम नाट्न्स	55.0
	फ्यूकस स्पाइरेलिस	400.0
	लेमिनेरिया डिजिटाटा	8800.0
कवक	फोम्स फोमेन्टेरियस	2.4
	हेलवेला एसकुलेन्टा	6.1
	केल्वेसिया सीलेटा	9.5
लाइकेन	क्लेडोनिया प्रजाति	1.8
ब्रायोफाइट्स	बजानिया प्रजाति	3.0
	पॉली ट्राइकम कम्यून	4.0
फर्न कुल	इक्वीसीटम आरवेन्स	2.5
	टेरीडियम एक्वीलीनम्	6.7
	लाइकोपोडियम ल्यूसीडम्	7.5
जिम्नोस्पर्म	पाइनस वर्जीनियाना	2.6
	जुनीपेरस वर्जीनियाना	5.0
एन्जीयोस्पर्म		
एक बीज पत्री	जिया मेज् (मकाई) 3.4	
	एस्पेरेगस ऑफीसिनेलिस (तना)	5.9
	एलियम् सीपा (प्याज)	10.4
द्विबीजपत्री	सोलेनम् ट्यूबेरोसम (आलू)	4.1
	एसर सेकेरम (तना)	6.2
	ब्रासिका ओलिरेसिया (फूलगोभी)	10.0

जानवरों एवं मनुष्यों के लिए आवश्यक आयोडीन

हमारे शरीर में थाइराइड सबसे बड़ी अन्तःस्रावी ग्रन्थि है। इस ग्रन्थि में उपस्थित आयोडीन थाइरोग्लोब्यूलिन की उपस्थिति में यह हमारे रक्त में जल अपघटित होकर थाइराक्सिन बनाती है। थाइराक्सिन की संरचना टाइरोसिन नामक अमीनो अम्ल से मिलती जुलती. है। थाइराइड हारमोन्स यकृत में विएमीनन और हमारे ऊतकों में साइटोक्रोम सी की मात्रा में वृद्धि करते हैं। इनकी मदद से उभयचरों (मेंढकों) में कायांतरण की प्रक्रिया तेजी से सम्पन्न होती है।

मनुष्यों के लिए भी आयोडीन कम आवश्यक नहीं है। 15 वर्षीय बच्चे हेतु प्रतिदिन एक मिलीग्राम आयोडीन की आवश्यकता होती है। थाइराक्सिन की कमी से बच्चों में क्रेटिनिज्म अथवा मन्द बुद्धि एवं बड़ों में मिक्सोडेमा नामक बीमारियाँ होती हैं। मिक्सोडेमा में मानसिक विकारों के साथ चेहरा फूला हुआ नजर आता है। थाइराक्सिन की कमी जनन अंगों के विकास को प्रभावित करती है।

पहाड़ी स्थानों में जहाँ पानी में आयोडीन की मात्रा कम होती है मनुष्यों में घेंघा बीमारी उत्पन्न हो जाती है। इससे गले में उपस्थित थाइराइड ग्रन्थि में अनियमित वृद्धि होती है। इसमें हमारे शरीर में पानी एवं वसा के इकट्ठे होने से शरीर का भार बढ़ जाता है। समुद्र के तटीय प्रदेशों में रहने वाले लोगों में अक्सर यह

शेष पृष्ठ 30 पर

कीटनाशक कीटों का तो नहीं मानव का नाश अवश्य करेंगे

✍ विश्व मोहन तिवारी

हमें मालूम हो या न मालूम हो, आज मानवों और कीटों के बीच भयंकर युद्ध हो रहा है। और चाहे हमारा अहंकार यह न मानने दे, किन्तु हम यह युद्ध उन कीड़े मकोड़ों से हार रहे हैं– विश्व में प्रतिवर्ष लाखों टनों के प्रतिवर्ष नये नये कीटनाशकों की बमबारी इसे सिद्ध करती है। यह युद्ध उसी समय प्रारम्भ हुआ था जब सारे विश्व पर हिटलर आक्रमण कर रहा था। वह सिद्ध करना चाहता था कि विश्व में केवल उसकी ही जाति को रहने का अधिकार है। उसी समय डीडीटी नामक नवीन कीटनाशक हथियार का आविष्कार हुआ था और डीडीटी के आक्रमण से कीटसंहार हुआ, अचानक उपज में वृद्धि होने लगी थी। चमत्कृत विश्व मान रहा था कि डीडीटी का असर केवल कीटों पर पड़ेगा, कशेरुकी जीवों (मानव सहित) पर नहीं। किन्तु जैसा कि तत्पश्चात् बार बार सिद्ध हुआ है यह 'मान्यता' गलत है। सारे जीव एक अकाट्य रक्षा बन्धन से बँधे हुये हैं।

पाँचवें दशक के प्रारम्भ की बात है। अमेरिका में कपास की खेती का विशेष महत्व था, डीडीटी ने कपास के तथाकथित शत्रु 'कीट' मारे, कपास की उपज बढ़ी और कम्पनियों ने विजय गीत सारे विश्व में गाये। किन्तु दूसरे वर्ष ही कपास का एक नया शत्रु, एक अनजान पतंगा (Heliothis virensis) लाखों की संख्या में आ धमका। हुआ यह था कि डीडीटी से न केवल कपास के शत्रु कीट मरे थे, अन्य कीट भी मरे थे और साथ साथ असंख्य पक्षी भी। हीलियोथिस विरेन्सिस भी काफी संख्या में हताहत हुये थे, किन्तु कुछ संख्या में डीडीटी से लड़ने की क्षमता भी थी तो वे बच गये, तथा उन प्रभावित क्षेत्रों में उनकी संख्या पर नियंत्रण रखने वाले अन्य कीट और विशेषकर पक्षी भी लगभग नगण्य बचे थे। अतएव हीलियोथिस विरेन्सिस का अब अक्षत साम्राज्य स्थापित हो गया था। फलस्वरूप इधर कपास की फसल को बहुत नुकसान हुआ और उधर हिटलर का अन्त हुआ। इधर वैज्ञानिकों तथा किसानों की खुशी का। इस युद्ध की हार में किसानों का सर्वाधिक नुकसान हुआ। कम्पनियों ने तो लाखों डालर बना लिये थे, और भविष्य में उनसे दुगने चौगुने बनाने की योजना भी तैयार थी।

कीटनाशक कम्पनियों ने एक के बार एक तीव्र से तीव्रतर कीटनाशकों का उत्पादन किया, जीत का विश्वास दिलाया और 'साइक्लोडियोनैस' आर्गेनोफास्फेट कार्बामेट् इत्यादि इत्यादि आयुधों का निर्माण किया। किन्तु हमेशा, जुये के प्रारम्भिक खिलाड़ी की तरह प्रारम्भ में उनकी जीत होती थी और फिर वह उससे भयंकर हार में बदल जाती थी। लगभग साठ वर्षों के अनवरत युद्ध में हारों के भुगतने के बाद भी, तीव्रतर आयुधों का निर्माण हो रहा है– इस समय पाइरेथ्राइड्स का जबर्दस्त प्रचार हो रहा है। किन्तु इस तथाकथित एटम बम का भी वही हश्र हो रहा है। किसान अब हताश हो रहे हैं किन्तु वे कीटनाशकों के दुष्चक्र में बुरी तरह फँसे हैं। रसायनज्ञों ने भी इस युद्ध में अपनी हार मान ली है। उन्होंने विकास जैववैज्ञानिकों से सहायता माँगी है।

एक ऐसे जीववैज्ञानिक डॉ0 मार्टिन टेलर ने इस पतंगे के युद्ध के फलस्वरूप क्रमशः उन्नत होते उसके विकास का अध्ययन किया है और उस पतंगे की एक अद्‌भुत शक्ति का पता लगाया है। जब भी उस पतंगे पर किसी भी कीटनाशक का आक्रमण होता है, उसके जीन्स उस विष का काट पैदा कर निरापद हो जाते हैं। उसके बाद उनकी संतान में यह शक्ति पैदायशी हो जाती है। यह पढ़कर मुझे रामायण के पात्र बाली की याद आ रही है– उसे यह वरदान था कि युद्ध करते समय सामने के

शत्रु की आधी शक्ति स्वयं ही उसमें आ जाती थी।

यहाँ ऐसी कोई बात नहीं है कि ऐसा वरदान केवल हीलियोथिस पतंगे को मिला हो। यह अद्भुत वरदान अनेकानेक कीटों को प्राप्त है अर्थात् अब यह युद्ध रसायन युद्ध न होकर जैव युद्ध हो गया है। हम शायद इसे जैव आतंकवाद कहना पसन्द न करें। इस वरदान के अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं, किन्तु यहाँ कुछ ही पर्याप्त होना चाहिये। फ्लाइंग स्केल कीटों ने मात्र छः संततियों में ब्यूक्विनोलेट नामक भयंकर विष का प्रतिरोध पैदा कर लिया है। भेड़ की आँतों में रहनेवाले नेमाटोड कृमियों ने तो मात्र तीन संततियों में थियाबैंडाजोल विष का प्रतिरोध पैदा कर लिया है और भेड़ के ऊपर आवासी चिंचिड़ियों (ticks) ने तो मात्र दो ही संततियों में शक्तिशाली विष डिएल्ड्रिन का प्रतिरोध पैदा कर लिया है।

मानव हैरान है कि राई बराबर इन मच्छर पहलवान कीटों के पास कौन–कौन से अचूक दाँव–पेंच हैं कि उन सरीखा सर्वबुद्धिमान, सर्वशक्तिमान तथा सर्वश्रेष्ठ मानव उन क्षुद्र जन्तुओं से युद्ध हार रहा है।

पहला तो यही कि अधिकांश कीट विषाक्त क्षेत्रों से दूर ही रहते हैं। दूसरे, डायमन्ड बैक पतंगों सरीखे कीट, यदि विषाक्त पौधों पर बैठ जायें तो वे अपनी विष प्रभावित टांगों का ही परित्याग कर देते हैं। फिर, क्यूलैक्स पिपिएन्स (Culex pipiens) जाति के मच्छर सरीखे कीट अपने विशेष प्रकिण्वों – एस्टरेसीज़ की सहायता द्वारा आर्गेनोफास्फेट सरीखे दुर्योधन विषों को पचा डालते हैं। किन्तु पक्षी तथा मानव उन विषों के कारण रोगों से ग्रस्त होते रहते हैं।

मानव का अहंकार आसानी से पराजय मानने वाला नहीं। वैज्ञानिकों ने एक विशेष निर्देशित प्रक्षेपास्त्र विष का आविष्कार किया है। उन्होंने गहन अध्ययन पर पता लगाया कि मस्तिष्क की नाड़ियों में सिग्नलों के वहन के लिये एक विशेष पथ होता है जिसे सोडियम–पथ कहते हैं। जीवन की विकास यात्रा में इस सोडियमपथ का विकास करोड़ों वर्ष पूर्व हुआ था। इसलिये यह सभी जीवों में समान रूप से कार्य करती है। वैज्ञानिकों ने सोचा कि इस सोडियम पथ पर आक्रमण करने से, एक तो,. उन्हें ऐसा आयुध मिल जायेगा जो सभी कीटों पर आक्रमण करेगा और दूसरे, कीट इस अत्यंत प्राचीन विकास कार्य के प्रतिरोध में, उत्परिर्वन कर नये जीन्स नहीं पैदा कर पायेंगे। इस ध्येय पूर्ति के लिये विकसित पैराथ्राइड नामक विष का एक ऐसा ही शक्तिशाली निर्देशित प्रक्षेपास्त्र है। इस ब्रह्मास्त्र के द्वारा वे मामूली सी अदना घरेलू मक्खी पर आक्रमण कर रहे हैं, क्योंकि इस मक्खी पर वे एक से एक तीव्र हथियारों, डीडीटी, डिएल्ड्रिन, आर्गेनोफास्फेट आदि का आक्रमण कर निराश हो चुके हैं। इन मक्खियों ने, प्रारम्भिक हार के बाद, इन सब का प्रतिरोध पैदा कर, अपने आपको निरापद सिद्ध कर दिया है।

डॉ0 मार्टिन टेलर ने खोज की है कि जब भी किसी कीट पर अत्यधिक खतरा आता है, उनके वंशाणुओं में उत्परिवर्तन की गति भी बहुत अधिक बढ़ जाती है, और वे नये नये जीन पैदा करते हैं। अधिकांश नये जीन असफल ही होते हैं किन्तु अन्ततः कोई नया जीन उस आत्यन्तिक खतरे के विरोध में सफल हो जाता है, और फिर उसके वंश वाले पुनः फलने फूलने लगते हैं। डॉ0 टेलर की, अपनी खोज के आधार पर, यह निश्चित मान्यता है कि जैव वैज्ञानिक ऐसा विष नहीं बना सकते कि जो उस कीट के भविष्य के जीनों को भी मार डाले। निर्देशित प्रक्षेपास्त्र विमान को सफलतापूर्वक मार सकते हैं क्योंकि वे उस विमान की भविष्य की स्थिति का सही अनुमान लगा सकते हैं। इस तरह के कीट के भविष्य के जीनों का सही पता या अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योकि यह नया जीन तो टक्कर के बाद पैदा होता है। अर्थात् कीटों से युद्ध करने में हमारी हार अन्ततः निश्चित है। तब हम क्यों पक्षियों तथा मानवों पर उन विषों द्वारा संकट पैदा करते जा रहे हैं ?

हमारी कीटों से यह हार दुहरी या तिहरी हार है। दूसरे उन विषों से पक्षी अवश्य संकटग्रस्त होते हैं। ये पक्षी भी वास्तव में उन कीटों पर नियंत्रण कर, प्रकृति में संतुलन बनाये रखते हैं। तीसरे, यह भी सिद्ध हो चुका है कि इन कीटनाशकों ने, सारी सावधानी के बावजूद, मानव स्वास्थ्य पर हमला किया है तथा कैन्सर जैसे अनेक रोगों को बढ़ावा दिया है। चौथे, कीटनाशक विष

पृथ्वी को, उसकी मिट्टी को, जल को, वायु को, यहाँ तक कि उसके आकाश को प्रदूषित कर रहे हैं– अर्थात् जीवन को विषाक्त कर रहे हैं।

विशेष अध्ययन से पता चला है कि कीटनाशकों के प्रयोग से पूर्व अमेरिकी किसानों की कुल फसल का मात्र सात प्रतिशत ही कीट खा रहे थे। किन्तु आठवें तथा नौवें दशक में जब कीटनाशक छाये हुये थे, तब यह नुकसान, घटकर नहीं, बढ़कर तेरह प्रतिशत हो गया था। साथ ही कीटनाशकों का खर्च अलग और उनके द्वारा पैदा संकट अलग।

जाति, विशेषकर, अमेरिकियों से अभ्यर्थना की है, हम अपनी सामाजिक चेतना में इस ग्रह पृथ्वी को भी सम्मिलित करें। हजारों वर्ष पूर्व हमारे ऋषियों ने इस रहस्य को समझकर 'माता भूमिः पुत्रोहम् पृथिव्याः' की प्रकृति प्रेमी संस्कृति को स्थापित किया था। क्या हम भारतवासी इस मंत्र को तोते की ही तरह नहीं दुहराते हैं ? जिस तरह से हम गंगा का प्रदूषण कर रहे हैं, हिमालय को, भारतमाता को निर्ममतापूर्वक वृक्ष काटकर नग्न कर रहे हैं, उससे तो यही सिद्ध होता है।

पूर्व एयर वाइस मार्शल
103 मोजोनरा कोर्ट, लास गेटास
कैलिफोर्निया,95032
यू.एस.ए.

पृष्ठ 9 का शेष

होते हैं तथा कैंसर और बुढ़ापाजन्य कई घातक रोग जैसे कि एथेरोक्लेरोसिस, एंजाइना, हृदयाघात, गठिया, मधुमेह आदि के लिए जिम्मेदार होते हैं।

हालाँकि हमारे शरीर में सुपर आक्साइड डिस्म्यूरेज नामक एक एंजाइम प्राकृतिक रूप से उत्पन्न होता है जो मुक्त मूलकों को उदासीन करके लिपिड पर आक्साइडों के बनने पर रोक लगाता है, लेकिन कुछ तो आनुवांशिक गुणों तथा कुछ रहन–सहन एवं खान–पान की भिन्नता के कारण ही अलग–अलग मनुष्यों में इस एंजाइम के स्रावित होने की मात्रा भी अलग होती है। जब हमारा शरीर इस उपकारी एंजाइम को उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाता है तो ये मुक्त मूलक, जिनका नामकरण 'बायोकेमिकल बैड ब्वाएज' वैज्ञानिकों ने उनकी प्रकृति को देखते हुए ठीक ही किया है, शरीर में अपना कहर ढाना शुरू कर देते हैं। शरीर की कोशिकाओं को नष्ट या विकृत कर शरीर में बीमारियों के लक्षण पैदा करने के अलावा ये मुक्त मूलक अपने अनिष्टकारी प्रभाव से शरीर में वृद्धावस्था के लक्षण एवं बुढ़ापे की प्रक्रिया को धीमा करने के लिए भी शरीर से इन मुक्त मूलकों की सफाई बहुत आवश्यक है। विटामिन ए, सी तथा ई एवं बीटा कैरोटिन आदि प्रति आक्सीकारकों की तरह कार्य करते हैं। कच्चा लहसुन तथा शहद तो बहुत ही श्रेष्ठ प्रति आक्सीकारक माने जाते हैं। अतः भोजन में प्रति आक्सीकारकों की मौजूदगी स्वस्थ बने रहने एवं बुढ़ापे की प्रक्रिया को धीमा करने के लिए बहुत जरूरी है।

हालाँकि जरा वैज्ञानिकों की बुढ़ापे के खिलाफ जंग अभी काफी लम्बी लगती है, पर यह तय है कि जीवन की गुणवत्ता तथा मनुष्य की औसत आयु में आने वाले सालों में गुणात्मक परिवर्तन अवश्य आएगा। इस संदर्भ में माइकेल रोज, जो कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में विकासी जीव विज्ञान के प्रोफेसर हैं, का कहना है : "हमारे जीवन के बाद के सालों के वजूद एवं उसकी क्रियाशीलता में निरंतर सुधार होगा, ठीक उसी तरह जिस तरह कि पिछली एक शताब्दी के सतत प्रयासों से मोटर गाड़ियों की निर्माण तकनीक एवं उनकी गुणवत्ता में अभूतपूर्व सुधार हुए हैं। मानव जीवन की मियाद को कहाँ तक खींचा जा सकता है, इस बारे में व्यक्तिगत तौर पर मुझे कोई अंतिम सीमा नजर नहीं आती है। बस केवल हमारे वैज्ञानिक यह सीख लें कि बुढ़ापे की प्रक्रिया को धीमा करने वाले जीनों को पुनः क्रियाशील कैसे बनाया जाए या फिर विभिन्न दवाओं का एक ऐसा 'काकटेल' बनाने में वे कामयाब रहें जो आनुवांशिक इंजीनियरी के समरूप ही अपना कार्य अंजाम दे।"

43, देशबंधु सोसाइटी
15, पटपड़गंज
दिल्ली–100 092

स्तम्भ कोशिकाएँ

विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी

मानव व अन्य जीवों का शरीर एक स्वतंत्र इकाई नहीं होकर असंख्य कोशिकाओं के संयुक्त प्रयास का परिणाम होता है। जीवों के शरीर में पाई जाने वाली असंख्य कोशिकाओं में से प्रत्येक का कार्य निर्धारित होता है। कोई हृदय बनाने में सहयोग करती है तो कोई हड्डियाँ! कोई श्वसन क्रिया संपादित करती है तो कोई पाचन। मानव शरीर में लगभग 200 प्रकार की कोशिकाएँ पाई जाती हैं। इन सभी प्रकार की कोशिकाओं की उत्पत्ति प्रारंभिक सरल कोशिकाओं से होती है। इन प्रारंभिक सरल कोशिकाओं को ही स्तम्भ कोशिका कहते हैं। स्तम्भ कोशिकाएँ कोरे कागज की तरह होती हैं। एक विशिष्ट संकेत के द्वारा उन्हें मानव शरीर रूपी पुस्तक के 200 पृष्ठों में से किसी क्षत विक्षत अंग की मरम्मत करने तथा आवश्यकता होने पर पूर्ण नया अंग प्रदान कर सकने वाले दाता के रूप में देखा जा रहा है। शारीरिक अंग की विकृति के कारण उत्पन्न रोगों जैसे डायबिटीज, पार्किंसन व अल्ज़ीमर आदि रोगों के रोगियों में स्तम्भ कोशिकाओं की खोज में एक नई आशा का संचार किया है।

स्तम्भ कोशिकाओं के प्रकार

मानव हो या पशु–पक्षी – सभी जीवों का प्रारंभ एक कोशिका निषेचित अंड से होता है। निषेचित अंड एक प्रारंभिक सरल कोशिका होता है जिसमें जीव शरीर में पाई जाने वाली किसी भी प्रकार की कोशिका में बदलने की शक्ति होती है। इसी कारण निषेचित अंड एक पूर्णशक्त स्तम्भ कोशिका कहलाता है। निषेचित अंड के विभाजन से बनने वाली कुछ प्रारंभिक कोशिकाएँ भी पूर्णशक्त होती हैं। उनमें से भी संपूर्ण जीव को विकसित होने की क्षमता होती है। जुड़वां हमशक्ल भाइयों या बहनों की उत्पत्ति निषेचित अंड के विभाजन से बनी पूर्णशक्त कोशिकाओं के एक–दूसरे से अलग होकर स्वतंत्र रूप से विकसित होने के कारण होती है।

प्रारंभिक पूर्णशक्त कोशिकाओं के और विभाजित होने पर उनकी शक्तता घटती जाती है। जब भ्रूण गेंद जैसी अवस्था में होता है तब सतह की कोशिकाओं के लिए प्लेसेंटा बनाने का कार्य निर्धारित हो चुका होता है। भीतरी भाग की कोशिकाएँ शरीर के शेष ऊतकों को बनाने की क्षमता रखती हैं। इन भीतरी कोशिकाओं को अधिशक्त स्तम्भ कोशिकाएँ कहते हैं। अधिशक्त कोशिकाओं में अनेक प्रकार के ऊतकों में विकसित होने की क्षमता होती है। इनके विभाजन से बनी बहुशक्त स्तम्भ कोशिकाओं में किसी एक प्रकार के ऊतक में पाई जाने वाली कोशिकाओं को जन्म देने की क्षमता रह जाती है। जैसे रुधिर बहुशक्त स्तम्भ कोशिकाएँ रुधिर ऊतक में पाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की रुधिर कणिकाओं को ही बना सकती हैं।

खोज

1981 में कुछ अनुसंधानकर्ताओं ने यह सूचना दी थी कि उन्हें चूहों की स्तम्भ कोशिकाओं को प्रयोगशाला में उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त हुई है। नवम्बर 1998 में विस्कोंसिन विश्वविद्यालय से जेम्स थामसन ने कूड़ेदान में फेंके अतिरिक्त मानव भ्रूणों से स्तम्भ कोशिकाओं को अलग कर उन्हें लंबे समय तक स्वस्थ एवं विभाजन योग्य रखने में सफलता प्राप्त की। कुछ समय बाद होपकिन्स विश्वविद्यालय के जोहर गिअरहार्ड ने नौ माह के मानव भ्रूण से भ्रूणीय स्तम्भ कोशिकाएँ प्राप्त कर चिकित्सा क्षेत्र में एक धमाका किया। इसके पूर्व यह माना जाता रहा है कि मानव भ्रूण में प्रथम आठ दिन तक

ही अधिशक्त स्तम्भ कोशिकाएँ पाई जाती हैं। इसके बाद बच्चों व बड़ों के शरीर में बहुशक्त स्तम्भ कोशिकाओं की खोज ने और उत्साह उत्पन्न किया। परिणामस्वरूप भारत सहित दुनिया के कई देशों के अनुसंधान दल स्तम्भ कोशिकाओं को पालतू बनाने के प्रयास में जुट गए हैं।

उपयोगिता

स्तम्भ कोशिकाओं में अनेकानेक संभावनाएँ देखी जा रही हैं। स्तम्भ कोशिकाओं का उपयोग क्षतिग्रस्त अंगों की मरम्मत करने में किया जा सकेगा। अंग प्रत्यारोपण के किसी आशार्थी को अंगदाता की मेहरबानी पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। किसी चिकित्सकीय व्यावसायिक संगठन को रकम चुका कर किसी भी समय आवश्यक अंग प्राप्त कर प्रत्यारोपण कराया जा सकेगा। स्तम्भ कोशिकाओं के विभाजन को नियंत्रित करने वाले कारकों को समझ कर, मानव शरीर में उत्पन्न होने वाले जन्मजात विकारों को रोका जा सकेगा। मानव शरीर पर औषधीय प्रभावों को जानते ही अधिक कारगर विधियाँ उपलब्ध होने की संभावनाएँ भी प्रकट की जा रही हैं।

अवरोध

वर्तमान में मानव अधिशक्त स्तम्भ कोशिकाओं को प्राप्त करने की तीन विधियाँ ज्ञात हैं। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधि मानव भ्रूण से स्तम्भ कोशिकाएँ प्राप्त कर उनका संवर्धन करने की है। भ्रूणीय स्तम्भ कोशिकाओं का वांछित उपयोग करने में अभी कई कठिनाइयाँ हैं। स्तम्भ कोशिकाओं का मानव शरीर में पाई जाने वाली कोशिकाओं के 200 प्रकारों में से वांछित प्रकार में बदलने की विधि ज्ञात नहीं है। पूर्ण नियंत्रण के अभाव में किसी अंग में गलत ऊतक के बनने अर्थात् टेराटोकार्सीकोमा की स्थिति पैदा हो सकती है। भ्रूणीय स्तम्भ कोशिकाएँ भिन्न व्यक्ति से प्राप्त होने के कारण उपभोक्ता शरीर द्वारा उनको अस्वीकृत करने का खतरा बना रहता है। किसी जीव के केन्द्रकहीन अंड को उसकी कायिक कोशिका से मिलाकर पूर्णशक्त स्तम्भ कोशिका प्राप्त करने के प्रयोग भी किए जा सकते हैं। इस कोशिका के विभाजन से प्राप्त भ्रूणीय अधिशक्त कोशिकाओं के उपयोग से शारीरिक अस्वीकृति का खतरा नहीं रहता। अधिक समय लेने के कारण इस विधि को व्यावहारिक नहीं माना जा रहा है। बच्चे एवं वयस्क शरीर से प्राप्त बहुशक्त स्तम्भ कोशिकाओं का उपयोग किया जा सकता है मगर अभी तक बहुत कम श्रेणियों की स्तम्भ कोशिकाएँ वयस्क शरीर में खोजी जा सकी हैं।

स्तम्भ कोशिकाओं को पालतू बनाकर उनका वांछित उपयोग करने के प्रयासों में दुनिया भर के वैज्ञानिक जुटे हैं। भारत में रिलायंस साइंसेज मुंबई, राष्ट्रीय जीव विज्ञान केन्द्र, बंगलौर, आदि संस्थानों में शोध कार्य चल रहा है। स्तम्भ कोशिकाओं के अनुसंधान को लेकर विश्व स्तर पर विरोध व समर्थन का मिला जुला दृश्य उभर रहा है। विरोधी पक्ष इसे एक की जान बचाने हेतु दूसरे की हत्या करने का कृत्य बता रहे हैं। उनका कहना है कि विश्व मानव मांस का व्यापार करने की ओर अग्रसर हो रहा है। इस प्रयास को रोका जाना चाहिए। दूसरी ओर शारीरिक विकारों के कारण नारकीय जीवन जी रहे लोगों व उनके परिवारजनों को इन अनुसंधानों में आशा की किरण दिखाई दे रही है। वे इस अनुसंधान को तेजी से आगे बढ़ाने के पक्ष में माहौल बना रहे है। अनुसंधान के महत्त्व को देखते हुए इस दिशा में तेजी से प्रगति होने की संभावना है।

स्तम्भ कोशिकाओं की जानकारी ने महाभारत ग्रंथ में वर्णित कुल्हड़ों में कौरवों के पैदा होने की घटना को सत्य प्रमाणित भले ही नहीं किया हो, इसे एक आधुनिक विज्ञान कथा के समकक्ष तो खड़ा ही कर दिया है। उस समय इस तरह की कल्पना कर लेना भी किसी आविष्कार से कम नहीं था। स्तम्भ कोशिकाओं के क्षेत्र में हो रहे अनुसंधानों के परिणाम आने वाले समय में हमें स्तम्भित करते रहेंगे।

2, तिलक नगर, पाली
(राजस्थान) – 306 401

जैव प्रौद्योगिकी

चार अक्षरों (AGCT) की महिमा

✍ डॉ. शिवगोपाल मिश्र

देश के सबसे महान फिंगरप्रिंटरवेत्ता डॉ. लाल जी सिंह का कहना है कि डीएनए अनुक्रमण से अपराधियों के फिंगरप्रिंट द्वारा अपराध का पता चल सकेगा। उनका कहना है कि मानव जीनोम में 1 से 1.5 लाख जीन हैं (किंतु अब यह संख्या 26–30 हजार आँकी गई है)। मानव जीनोम का विस्तार 3.2 बिलियन क्षारक युग्मों का है और किन्हीं भी दो मनुष्यों के जीनोम में केवल 0.1 प्रतिशत का अन्तर होता है। पूरे जीनोम में प्रोटीनों का कोडन करने वाला अंश 2 प्रतिशत है। यही नहीं, उन्होंने बताया है कि मनुष्य के जीनोम में तथा अन्य प्राणियों में काफी अंश एक सा है। उदाहरणार्थ यीस्ट का 46 प्रतिशत, कीड़ों का 43 प्रतिशत, चिम्पैंजी का 99 प्रतिशत जीनोम मानव जैसा है।

हमारे शरीर में $10x10^{12}$ कोशिकाएँ (10 ट्रिलियन) होंगी। इस कोशिका में एक केन्द्रक (nucleus) होता है और इस केन्द्रक में धागे जैसे गुणसूत्र (chromosomes) होते हैं। प्रत्येक मानव की कोशिका के केन्द्रक में ऐसे 46 गुणसूत्र होते हैं जिनमें से 23 पिता के वीर्य से तथा 23 माता के अंड से आते हैं। ये गुणसूत्र न्यूक्लीइक अम्लों (डीएनए) तथा प्रोटीनों से बने होते हैं। न्यूक्लीइक अम्ल न्यूक्लियोटाइड इकाइयों से बने होते हैं। सभी क्रोमोसोमों से प्राप्त डीएनए की कुल लम्बाई 2 मीटर होती है। इतनी लम्बाई वाले डीएनए 10μm वाले केन्द्रक के भीतर भरे रहते हैं। इतने कम स्थान में डीएनए का अनुकृतियन (replication) तथा अनुलेखन (transcription) होता है। स्वाभाविक है कि इतने कम स्थान में त्रुटि हो सकती है जिससे जीनी कुव्यवस्था फैले और इससे रोग उत्पन्न हो जाएँ।

जब कोशिका विभाजित होती है तो उससे डीएनए के दो रज्जुक (strands) पृथक–पृथक हो जाते हैं और दो नए डीएनए रज्जुक बनते हैं। इस तरह प्रत्येक नवीन कोशिका में एक पुराना और एक नया डीएनए रज्जुक रहता है। डीएनए वस्तुतः चार न्यूक्लियोटाइडों (न्यूक्लियोटाइड ट्राइफास्फेटों) का रज्जुक होता है। डीएनए की द्विकुंडलिनी में शर्करा तथा न्यूक्लियोटाइडों के फास्फेट रहते हैं जो न्यूक्लियोटाइडों के चार क्षारकों में एक साथ थमे रहते हैं। ये चार क्षारक हैं ऐडीनीन (A), ग्वानीन (G), साइटोसीन (C) तथा थायमीन (T)। एडीनीन (A) दूसरे रज्जुक के थायमीन (T) से युग्मित (AT) होता है और ग्वानीन (G) साइटोसीन (C) के साथ। इन क्षारकों की संरचना ऐसी होती है कि A तथा T कभी भी G तथा C से युग्मित नहीं होते। इसलिए जब भी नया रज्जुक बनता है तो ऐडीनीन थायमीन के साथ और ग्वानीन सदैव साइटोसीन से युग्मित होता है। इस तरह जो नया डीएनए रज्जुक बनता है वह पुराने का पूरक होता है। अतः यदि इन दोनों डीएनए रज्जुकों में से किसी एक के भी क्षारकों के अनुक्रम को ज्ञात कर लिया जाए तो दूसरे रज्जुक का भी अनुक्रम ज्ञात हो सकता है। वस्तुतः डीएनए इन्हीं न्यूक्लियोटाइडों के अनुक्रम के रूप में आनुवांशिक सूचना को जनकों से संततियों तक पहुँचाता है। डीएनए में इन क्षारकों के अनुक्रम के द्वारा ही उसका कार्य निर्धारित होता है। कोशिका के डीएनए का एक लघु अंश जो कि विशेष कार्य सम्पन्न करता है, जीन (gene) कहलाता है। डीएनए पहले आरएनए (राइबोन्यूक्लिक अम्ल) बनाता है और फिर इससे प्रोटीन बनता है जो कोशिका में कोई विशेष कार्य करता है।

यह विचित्र बात है कि इस पृथ्वी ग्रह के सारे प्राणी केवल इन्हीं चार अक्षरों (AGCT) से बने हैं, जिनसे इतनी जैव विविधता का जन्म हुआ है। विश्व में केवल जुडवाँ को छोड़कर कोई भी दो प्राणी एकजैसे नहीं मिलेंगे।

प्रश्न उठता है कि मानव जीनोम में कुल कितने जीन होंगे ? कोई भी सही सही नहीं बता सकता किन्तु अनुमान है कि लगभग 35000 जीन होंगे। इसका कारण यह है कि डीएनए का केवल 2 प्रतिशत अंश ही प्रोटीनों के लिए जीन कोडिंग करता है। शेष 98 प्रतिशत निष्क्रिय है जिसके कार्यों का अभी तक कुछ भी पता नहीं चला है।

मानव जीनोम में कुल 3.2 बिलियन क्षारक युग्म होंगे। हजारों वैज्ञानिक इन चार अक्षरों से बनी कोडित भाषा को सुलझाने में अहर्निश कार्यरत हैं।

'ह्यूमन जीनोम प्रोजेक्ट' कनसोर्टियम ने अनुमान लगाया है कि मानव जीनोम में 31000 प्रोटीन कोडिंग जीन हैं। यीस्ट में 58000 जीन, ड्रोसोफिला में 13000 और पौधे में 26000 जीन पाए जाते हैं।

इस ज्ञान के लाभ

कुल मिलाकर सम्भावना व्यक्त की जा रही है कि अगले दो तीन दशकों में यह बताना सम्भव हो सकेगा कि नवजात शिशु को कौन सी बीमारी हो सकती है क्योंकि तब तक प्रत्येक दोषपूर्ण जीन की पहचान की जा सकेगी। इस तरह इक्कीसवीं सदी में जो चिकित्सा उपचार होगा वह निवारणात्मक होगा, रोगहरणात्मक नहीं। डीएनए विश्लेषण के आधार पर हर व्यक्ति को यह बताया जा सकेगा कि उसके स्वास्थ्य, भोजन, रहन सहन के लिए कौन कौन से कारक आवश्यक होंगे जिससे रोगों से बचा जा सके।

स्मरण रहे कि हमारा जीनोम हमें अपने पूर्वजों की थाती के रूप में मिला है जो लाखों वर्ष पुराना है। हमें इसे भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित करना है और इसे सुरक्षित ढंग से प्रदान करने के लिए हमें प्रदूषण और प्रकृति से छेड़छाड़ करने से उत्पन्न दोषों से बचाना होगा। यह ध्यान में रखना होगा कि असावधानी के कारण न जाने कितनी जातियाँ इस धराधाम से लुप्त हो चुकी हैं अतः हम ऐसा कुछ भी न करें जिससे कि मानव जाति विलुप्त हो जाए।

📖 **प्रधानमंत्री**
विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग, इलाहाबाद–211 002

डॉ. लाल जी सिंह

आप बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र रहे हैं। आपने यहीं से साइटोजेनेटिक्स में डाक्टरेट उपाधि प्राप्त की। आपको पूर्वांचल विश्वविद्यालय ने डी.एस–सी. मानद उपाधि प्रदान की है।

आप नेशनल एकेडमी, इण्डियन एकेडमी आफ साइंस तथा इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी के फेलो हैं।

आपको अनेक पुरस्कार मिल चुके हैं यथा–

Outstanding Forensic Expert Award
Om Prakash Bhasin Award,
Vasvik Research Award and CSIR Technology Award

आपक शोध विषय तथा आपकी उपलब्धियाँ–

Special probe for DNA fingerprinting
Genetic viability in Asian tiger and Lion population by DNA fingerprinting
Molecular Sex Determination, DNA Fingerprinting, Wild Life Conservation, Ancient DNA Studies, Human Genome Analysis.

सम्प्रति हैदाराबाद में निदेशक हैं

Director CCMB
Centre for Cellular and Molecular Biology
Hyderabad.

विज्ञान के प्रति ललक बढ़ाने के लिए स्कूली शिक्षा में बदलाव जरूरी : डॉ0 माशेलकर

काउंसिल ऑफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च (सीएसआईआर) के महानिदेशक डॉ० आर.ए. माशेलकर ने कहा है कि समाज में वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देने के लिए स्कूली शिक्षा के ढाँचे में आमूलचूल परिवर्तन करना होगा। उन्होंने कहा कि बिना वैज्ञानिक सोच के विकसित राष्ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती। इसी अभाव का नतीजा है कि कुछ ही घंटे में दुनिया भर में गणेश जी की मूर्तियाँ दूध पीने लगती हैं और देश की राजधानी में लोग 'मंकी मैन' पर भरोसा कर लेते हैं। उन्होंने विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा में दिए जाने की वकालत की। भारतीय सांइस कांग्रेस की 89वीं बैठक में शामिल होने आए डॉ० माशेलकर ने बताया कि सीएसआईआर देश के पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान से जोड़ने का प्रयास कर रहा है। डॉ० माशेलकर ने कहा कि वर्तमान शिक्षा पद्धति में बच्चों के लिए कुछ नया करना या सीखना संभव नहीं होता। उनमें सवाल करने की जिज्ञासा पैदा नहीं होती जबकि विज्ञान के समस्त आविष्कार क्यों ? और कैसे ? के परिणाम हैं। पढ़ाने का ढंग इतना पिटा—पिटाया और उबाऊ है कि सारी कोशिश परीक्षा के चंद सवालों को हल करने तक सीमित रह जाती है। देश में सिर्फ 6 फीसदी बच्चों को कक्षा 10 तक की शिक्षा नसीब होती है फिर भी गुणवत्ता का हाल यह है कि बच्चों को परीक्षा में नंबर तो बहुत मिलते हैं लेकिन समझ के स्तर पर वे कम ही संतुष्ट करते हैं। वर्तमान शिक्षा पद्धति रट्टू तोता ही बनाती है। उन्होंने अफसोस जताते हुए बताया कि सीएसआईआर द्वारा १५००० रुपये की 'श्यामाप्रसाद मुखर्जी छात्रवृत्ति' के लिए आयोजित परीक्षा में चार छात्र ही सफल हुए जबकि 25 छात्रवृत्तियाँ दी जानी थीं।

उन्होंने सपुस्तक परीक्षा प्रणाली लागू करने की वकालत करते हुए कहा कि परीक्षा में बच्चों को हल करने के लिए कुछ समस्याएँ दी जानी चाहिए जिन्हें कई तरीकों से हल किया जा सकता है। इसके अलावा शिक्षक का मूल्यांकन बच्चों द्वारा कराया जाना चाहिए ताकि वे अपना काम जिम्मेदारी से कर सकें। उन्होंने कहा कि बच्चों को विज्ञान की शिक्षा मातृभाषा में दिए जाने की जरूरत है। फिलहाल तो मेधावी बच्चों की अधिक ऊर्जा अंग्रेजी सीखने में चली जाती है और विज्ञान उनकी प्राथमिकता में नहीं रह जाता। विकसित राष्ट्र बनना तभी संभाव है जब समाज में ज्ञान—विज्ञान की मान्यता हो, उसका सृजन और उसका संरक्षण हो। इसके अलावा पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक विज्ञान के तकाजों पर भी तौला जा रहा है। रिलायंस जैसी कंपनियाँ अपने उत्पादों की गुणवत्ता बढ़ाने तथा उनकी परख के लए सीएसआईआर की सेवाएँ ले रही हैं। सीएसआईआर की 40 प्रयोगशालाओं में 19 का एक नेटवर्क तैयार किया गया है जो जड़ी—बूटियों के पारंपरिक ज्ञान का परीक्षण कर रहा है। इसका उद्देश्य पारंपरिक देशी दवाओं के वैज्ञानिक आधार को समझना, उन्हें मानक के अनुरूप बनाना तथा उनके निर्माण की प्रक्रिया को आधुनिक बनाना है।

(साभार)

सुंदरवन

शिवेन्द्र कुमार पाण्डेय

भारत व बंगलादेश सीमा में अवस्थित सुंदरवन, विश्वभर में सबसे विशाल कच्छीय वन प्रदेश हैं। जहां विश्व के 60 प्रतिशत बाघ पाये जाते हैं। सन् 1997 में यू.एन.ई.एस.सी.ओ. ने सुंदरवन क्षेत्र को 'विश्व सम्पत्ति' घोषित किया है। भारत सरकार द्वारा इन्हें बाघ रिजर्व (सन् 1972) व तत्पश्चात् राष्ट्रीय उद्यान (सन् 1985) भी घोषित किया जा चुका है। ताकि बाघों को समुचित संरक्षण दिया जा सके। इन कार्य योजनाओं के फलस्वरूप बाघों को बचाने में कुछ सफलता तो अवश्य मिली है पर मानव जनसंख्या वृद्धि के कारण इस प्रदेश में भी अतिक्रमण लगातार बना हुआ है। इन वनों को यदि सुरक्षा प्रदान करनी है तो सरकार को कठोर कदम उठाने होंगे, अन्यथा निकट भविष्य में इन प्राकृतिक सुरक्षा के कवचों का अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

लगभग दो वर्ष पूर्व 'भारतीय सुंदरवन क्षेत्र के भीतर गोसाबा' नामक स्थान पर लकड़ी से 500 किलोवाट बिजली उत्पादन का एक प्लान्ट लगाया गया है जो वहाँ के स्थानीय 375 उपभोक्ताओं को बिजली की आपूर्ति करता है। यह प्लान्ट शाम के 5.30 बजे से रात 10.30 बजे तक ही चलाया जात है, पर इस थोड़े समय में ही इसको चलाने में 2.5 टन लकड़ी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। सुंदरवनों का महत्व समझते हुये हमें इस प्रकार के प्लान्टों को बन्द करना चाहिये। स्थानीय लोगों को बिजली अवश्य चाहिये, इसलिये ऐसे स्थानों पर सौर व पवन ऊर्जा संयत्र का निर्माण किया जाना चाहिये।

भारतीय सुंदरवन में करीब 32 लाख की आबादी है, जो रोटी रोजी के लिये इन्हीं वनों पर आश्रित है। मछली पकड़ना इनका प्रमुख पेशा है। पर विशेषज्ञों का कहना है कि कीमती झींगा मछलियों को पकड़ने के प्रयास में सैकड़ो तरह की दूसरी प्रजातियों की मछलियों के बच्चों को नष्ट कर दिया जाता है। मछली पकड़ने के वर्तमान तरीकों (जलपोत व नाइलान के महीन जाल, आदि का उपयोग) को बदलना होगा, अन्यथा यदि वर्तमान पद्धति जारी रही और ये वन इसी तरह नष्ट होते रहे, तो आगामी 10 वर्षों के भीतर झींगा मछली भी उपलब्ध नहीं हो सकेगी।

लेकिन आर्थिक विकास की दौड़ में मानव अतिक्रमण के फलस्वरूप इन वनों की अंधाधुन्ध कटाई से इन कच्छीय प्रदेशों का पारिस्थितिकीय परिवेश अस्तव्यस्त हो गया है और इसका हानिकारक प्रभाव भी अब हमें झेलना पड़ रहा है। विशेषकर कच्छ, उड़ीसा व आन्ध्र प्रदेश के समुद्रतटीय क्षेत्र जो इन वनों के विस्तार में कमी हो जाने के कारण समुद्री तूफानों को नियंत्रित करने में असमर्थ हो चुके हैं।

बंगाल की खाड़ी में प्रतिवर्ष 8–10 चक्रवात तूफान उभरते हैं (अरब सागर में) जिसके कारण उड़ीसा, आंध्र प्रदेश व बंगलादेश के तटवर्ती इलाकों में भारी तबाही मच जाती है। उड़ीसा के तट पर 21 अक्टूबर 1999 के दिन 10.30 से 12.30 बजे के दौरान 260 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से चलने वाली हवाओं के साथ एक चक्रवात तूफान ने झंझोड़ कर भीषण तबाही मचा दी। इसके पश्चात कुछ दिनों तक इस तटवर्ती इलाके में मूसलाधार वर्षा हुई और पाराद्वीप में तो समुद्र का पानी घुस गया और तटीय क्षेत्रों को 15 से 18 मीटर ऊँची समुद्री लहरों का सामना करना पड़ा। इस चक्रवात के कारण दस तटवर्ती जिलों में जान, माल, उद्योग, ढाँचागत संरचनाओं व संचार नेटवर्क को भारी क्षति पहुँची। इस तूफान से लगभग दो करोड़ नागरिक प्रभावित हो गये और लगभग 80 प्रतिशत वनस्पति नष्ट हो गई, जीव–जन्तु मरे वह अलग। तूफान की प्रचण्डता इस

तथ्य से भी स्पष्ट हो जाती है कि अभिलेखित भारतीय चक्रवातों के इतिहास में यह अपनी किस्म का दूसरा चक्रवात है।

जहाँ तक सुंदरवनों का प्रश्न है– बँगलादेश के सुंदरवनों को मानव अतिक्रमण के फलस्वरूप भारी नुकसान पहुंच चुका है। इसलिये उसे आये दिन तूफानों की चपेट सहनी पड़ रही है और प्रत्येक बार भारी जान माल का नुकसान होता है।

ढाका विश्वविद्यालय के प्रो0 ए. हैदर के अनुसार बँगलादेश के इन वनों के उत्तर पश्चिमी भाग के पानी में खारापन बढ़ कर लगभग 200 किलोमीटर अंतरस्थलीय क्षेत्रों तक पहुँच गया है। इसके कारण वहाँ के सभी स्थानीय जीव–जन्तु (बाघ, हरिण, सुअर, बंदर, मगर, आदि) अपने नाम प्राकृतिक निवासों को छोड़ उत्तर के घने जंगलों में पलायन कर चुके हैं। और समुद्रतटों के आसपास के अंतरस्थलीय भागों में पेड़ पौधे मरते जा रहे हैं।

भारत में भी मानव दखल के कारण सुंदरवन सिकुड़ते जा रहे हैं। कुछ दूर अतीत में इन वनों की सीमा हुगली (गंगा) नदी के पूर्वी तट से ही आरंभ हो जाती है। भारतीय सुंदरवन क्षेत्र में 32 लाख की आबादी है, जो रोटी–रोजी के लिये इन्हीं वनों पर आश्रित हैं। लेकिन बंगलादेश के मुकाबले भारतीय सुंदरवन, लगातार बढ़ते मानव अतिक्रमण के बावजूद अभी भी कुछ सुरक्षित है। विशेषज्ञों की राय में इनकी उपस्थिति के कारण चक्रवात तूफानों का 60 प्रतिशत वेग इस क्षेत्र में कम हो जाता है। यही कारण है कि पं0 बंगाल, इन चक्रवातों से अभी भी कुछ सुरक्षित है।

कच्छीय वनों के पारिस्थितिकीय संवेदनशीलता महत्व को समझाते हुये भारत सरकार ने 1950 का दशक समाप्त होने के पूर्व ही उनके संरक्षण कार्यक्रमों की ओर ध्यान देना आरंभ कर दिया था। फिर पर्यावरण संरक्षण कानून, 1986 और तत्पश्चात् कोस्टल जोन रेगुलेशन नोटिफिकेशन, 1991 के अंतर्गत इन्हें संवेदनशील तंत्र घोषित कर इनके दुरुपयोग व अप्राकृतिक दोहन पर रोक लगाने का प्राविधान स्थापित किया है। इन प्रयासों के फलस्वरूप, प्रकृति द्वारा स्थापित खाद्य शृंखला पिरामिड के शीर्ष पर आसीन बाघ को संरक्षण प्रदान करने में एक सीमा तक सफलता प्राप्त हुई है। इसी कारण भारतीय सुंदरवन आज भी कुछ सुरक्षित दिखाई दे रहे हैं– फलस्वरूप पं0 बंगाल इन चक्रवात तूफानों के विनाशकारी प्रभाव से बचा हुआ है। लेकिन कच्छ, उड़ीसा व आंध्र प्रदेश में कच्छीय वनों की दुर्दशा के कारण इनके तटीय इलाकों को पिछले कुछ वर्षों से चक्रवात तूफान आने पर भारी जान माल का नुकसान उठाना पड़ रहा है।

इसलिये भारत के समुद्रतटीय क्षेत्रों में कच्छीय वनस्पति को उनके धारण योग्य स्थानों पर पुनः स्थापित कर प्राकृतिक सुरक्षा कवच को सुदृढ़ता प्रदान करने की परियोजना भारत में अपनानी होगी।

छवि निकुंज
बांस बंग्लो कम्पाउण्ड
चौथी क्रासिंग, रांची रोड
पुरूलिया (पं0 बंगाल)

पर्यावरणविद् अनिल अग्रवाल का निधन

2 जनवरी 2002 को प्रसिद्ध पर्यावरणविद् अनिल अग्रवाल का देहरादून में निधन हो गया। वे देहरादून में कैंसर का इलाज कराने गए हुए थे। वे पिछले आठ साल से कैंसर और अस्थमा रोग से पीड़ित थे। उनका जन्म 29 नवंबर 1947 को हुआ था। पर्यावरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने के लिए उनको पद्मभूषण, पद्मश्री और नार्मन बोरलॉग पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। इसके अलावा वे सेंटर फॉर सांइस एंड इनवायरमेंट के अध्यक्ष एवं विज्ञान और पर्यावरण की पाक्षिक पत्रिका 'डाउन टू अर्थ' के संपादक भी थे। उन्होंने विज्ञान और पर्यावरण पर 20 पुस्तकें लिखी हैं।

भविष्य का ईंधन : गैस हाइड्रेट

✍ सुभाष लखेड़ा

आज हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के युग में जीवनयापन कर रहे हैं। इस तथ्य से हम परिचित हैं कि किसी भी आधुनिक व्यक्ति के जीवन स्तर का अंदाजा उसके द्वारा खर्च की जाने वाली ऊर्जा से लगाया जा सकता है। यही सिद्धांत अथवा नियम राष्ट्रों पर भी लागू होता है। यही वजह है कि विकसित देशों की संपूर्ण ऊर्जा खपत विकासशील राष्ट्रों की तुलना में कहीं अधिक है।

बहरहाल, पिछले कुछ दशकों के दौरान दुनिया में औद्योगीकरण इतने विशाल पैमाने पर और इतनी तेजी से हुआ है कि आज समूची दुनिया के सामने ऊर्जा संकट पैदा हो गया है। निःसन्देह इस संकट के समाधान के लिए आज दुनिया के सभी वैज्ञानिक और इंजीनियर प्रयत्नशील हैं।

दरअसल, मानव जीवन की गुणता में सुधार और उसके सर्वांगीण आर्थिक विकास, दोनों के लिए परम आवश्यक उपादानों में से ऊर्जा एक है। भविष्य में आर्थिक विकास की गति को बनाए रखने और दुनिया की बढ़ती हुई माँग की आपूर्ति करने हेतु अभी से हर संभव प्रयास जरूरी है। विश्व में फिलहाल अधिकांश ऊर्जा कोयला, जीवाश्म ईंधनों ,गोबर और लकड़ियों से प्राप्त की जाती है। यूँ जल विद्युत और परमाणु विखंडन से भी ऊर्जा प्राप्त की जाती है।

इस सन्दर्भ में यह तथ्य गौरतलब है कि ऊर्जा प्राप्त करने हेतु अब तक हम जिन स्रोतों पर प्रमुख रूप से निर्भर हैं, उनके भंडार अब समाप्त होने वाले हैं। उदाहरण के लिए, हमारे देश में कोयले के ज्ञात भंडार एक मोटे अनुमान के अनुसार आगामी एक सौ पचास वर्षों तक ही चल पायेंगे। जहाँ तक खनिज तेल और प्राकृतिक गैस का सवाल है, वर्तमान खपत के आधार पर इनके भंडार तो सिर्फ अगले तीस पैंतीस वर्षों तक ही हमारी आवश्यकताओं की आपूर्ति कर पायेंगे। कमोबेश, दुनिया के सभी देशों की स्थिति इन क्षेत्रों में एक जैसी है , और यही वजह है कि आज दुनिया के सभी देश ऐसे वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों की खोज में जुटे हैं जो भविष्य में उनकी ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।

फिलहाल दुनिया जिन वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों पर अपनी नज़र टिकाए हुए है, उनमें सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, सामुद्रिक ऊर्जा, भूतापीय ऊर्जा, जैव ऊर्जा, फ्यूज़न एनर्जी यानी संलयन ऊर्जा और मेगनेटोहाइड्रोडायनेमिक्स ऊर्जा प्रमुख हैं। यूँ जब इक्कीसवीं सदी के ईंधन की बात चलती है तो सर्वाधिक चर्चा हाइड्रोजन पर होती है। दरअसल जीवाश्म ईंधनों का घटता भंडार ही नहीं अपितु इनके इस्तेमाल से होने वाले प्रदूषण ने भी वैज्ञानिकों को ऐसे वैकल्पिक ईंधनों की खोज के लिये प्रेरित किया है जो परम्परागत ईंधनों पर पड़े बोझ को हल्का करने के अलावा पर्यावरण को प्रदूषित न करे। इस हिसाब से हाइड्रोजन एक उपयुक्त ईंधन है क्योंकि इसे वाहनों को चलाने से लेकर बिजली घरो में विद्युत पैदा करने तक के लिये इस्तेमाल किया जा सकता है। बहरहाल, वैज्ञानिकों के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि हाइड्रोजन को प्रचुर मात्रा में कहाँ से और कैसे प्राप्त किया जाये। कहने को तो जल से इसे भारी मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है किन्तु अभी तक वैज्ञानिक कोई ऐसी तकनीक नहीं खोज पाये हैं जो व्यापारिक दृष्टि से सस्ती हो और सरल ढंग से पानी को हाइड्रोजन और आक्सीजन में वियोजित करने में सक्षम हो।

जहाँ तक कुछ अन्य वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों का सवाल है उनमें से कुछ का उपयोग विद्युत पैदा करने के लिये तो किया जा सकता है किन्तु वाहन चलाने के लिये नहीं किया जा सकता है। परमाणु ऊर्जा के साथ भी कई खतरे जुड़े हुये हैं और यह अथवा इससे मिलते जुलते

दूसरे ऊर्जा स्रोत पूर्ण रूप से परम्परागत जीवाश्म ईंधनों का विकल्प नहीं बन सकते हैं।

बहरहाल, इधर पिछले कुछ वर्षों के दौरान वैज्ञानिकों को महासागरों के अन्दर दफन गैस हाइड्रेट के ऐसे विशाल भंडारों की जानकारी मिली है जो भविष्य की ईंधन आवश्यकताओं की आपूर्ति कर सकते हैं। गैस हाइड्रेट के इन विशाल भंडारों में लगभग दस हजार अरब टन मीथेन गैस मौजूद है जो ऊर्जा मुहैय्या करने के हिसाब से दुनिया के दूसरे जीवाश्म ईंधन भंडारों की तुलना में लगभग दुगनी है। सागरों की तलछट में मौजूद यह गैस हाइड्रेट प्रमुख रूप से मीथेन हाइड्रेट है। जहाँ तक ईंधन का सवाल है, यहाँ यह बताना उचित होगा कि फिलहाल हम ईंधन के रूप में जिस प्राकृतिक गैस का उपयोग करते हैं, उसमें लगभग अस्सी प्रतिशत मीथेन, अट्ठारह प्रतिशत ईथेन और शेष प्रोपेन और ब्यूटेन होती है।

दरअसल, गैस हाइड्रेट जल के उन पंजरों से बना एक ऐसा ठोस पदार्थ है जिनमें प्रमुख रूप से मीथेन गैस आबद्ध रहती है। सन् 1970 तक किसी को यह ज्ञान नहीं था कि सागरों की तलहटी में मीथेन हाइड्रेट के विशाल भंडार मौजूद हैं। बीसवीं सदी के आठवें दशक में कोलम्बिया यूनिवर्सिटी की लेमॉन्ट–डोहर्टी अर्थ ऑब्जरवेटरी के भू भौतिकीविद् जॉर्ज ब्रिआन और जॉन इविंग ने सर्वप्रथम यह पाया कि सागर तल में मीथेन हाइड्रेट छुपा हुआ है। यह जानकारी तब प्रकाश में आई जब ये वैज्ञानिक उत्तरी कैरोलिना के तट से लगभग 330 किलोमीटर दूर 'ब्लेक रिज' में भूकम्प संबंधी अध्ययन कर रहे थे। तत्पश्चात् दुनिया के कई समुद्र तटीय क्षेत्रों में मीथेन हाइड्रेट के विशाल भंडारों के मौजूद होने की बात प्रकाश में आयी।

सवाल उठता है कि सागरों की तलहटी में यह मीथेन हाइड्रेट कहाँ से आया है ? दरअसल, सागरों की तलछट के आक्सीजनरहित वातावरण में एक विशेष किस्म के सूक्ष्मजीवाणु कार्बनिक पदार्थों का विघटन करके मीथेन गैस बनाते हैं। सागरों के तल में पैदा यह मीथेन वहाँ बर्फीले रवों में कैद हो जाती है। मीथेन युक्त ऐसे बर्फीले रवों को ही मीथेन हाइड्रेट या गैस हाइड्रेट कहा जाता है।

मीथेन हाइड्रेट उन्हीं स्थानों पर पाया जाता है जहाँ समुद्र तल की गहराई पाँच सौ मीटर से अधिक होती है। समुद्र तल के नीचे लगभग 600 मीटर की दूरी तक मीथेन हाइड्रेट के भंडार पाये गये हैं। मीथेन हाइड्रेट की परतों के नीचे मीथेन गैस की परतें भी पायी गयी हैं।

दुनिया के ऐसे देश जो जीवाश्म ईंधनों पर निर्भर नहीं रहना चाहते हैं, ईंधन के रूप में गैस हाइड्रेट का इस्तेमाल करने के लिये प्रयत्नशील हैं। जापान में होकैडो तट पर एक ऐसे 'ड्रिलिंग प्रोजेक्ट' पर कार्य शुरू हो चुका है जो सागर की गहराइयों में मौजूद इस ईंधन भंडार का दोहन करने के लिये बनाया गया है।

बहरहाल, यह कार्य अत्यंत खर्चीला और कठिन है। विकसित देशों को जब तक पेट्रोल और प्राकृतिक गैस सस्ते दामों पर मिलता रहेगा, वे गैस हाइड्रेट संबंधी तकनीकों पर संभावित भारी खर्चे से बचना चाहेंगे। लेकिन देर–सबेर जब इनका यह विकल्प समाप्त हो जायेगा तब शायद ये गैस हाइड्रेट के दोहन के लिये कोशिश करेंगे और यदि उनकी कोशिशें सफल रहीं तो निःसन्देह सारी चुनौतियों के बावजूद भविष्य का ईंधन 'गैस हाइड्रेट' भी हो सकता है।

746, सेक्टर–3
आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 022

पृष्ठ 18 का शेष

बीमारी नहीं पाई जाती क्योंकि वे मछली इत्यादि अनेक समुद्री जीव जन्तुओं को अपने भोजन में लेते हैं। इन तमाम बीमारियों से बचने के लिए हमें पोटैशियम आयोडेट (KIO_3) एवं पोटैशियम आयोडाइड (KI) युक्त नमक का सेवन करनाा चाहिए।

वनस्पति विज्ञान विभाग
विज्ञान संकाय
महाराजा सयाजीराव वि0वि0
बड़ोदरा–390 002 (गुजरात)

समीक्षा

(1)

पुस्तक : द्वीक एवं 2–मानकित समष्टियों में संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन
लेखक : प्रो0 श्याम लाल सिंह तथा डॉ. देवेन्द्र दत्त शर्मा
प्रकाशक : वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग (मानव संसाधन विकास मंत्रालय)

गणित के स्नातक/स्नातकोत्तर/शोध स्तर के विद्यार्थियों को हिन्दी में मानक पुस्तकें उपलब्ध कराने के सरकारी उद्देश्य के तहत गणित पाठमाला 1 के अन्तर्गत '2–दूरीक एवं 2–मानकित समष्टियों के संपात एवं स्थिर बिंदु समीकरणों के साधन' जैसे अति उच्च स्तरीय विषय पर भारत सरकार के वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग (मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन) ने गणित के प्रतिष्ठत विद्वानों द्वारा लिखित यह पुस्तक प्रकाशित की है।

इस पुस्तक का आधार स्थिर बिंदु प्रमेय है जिन्हें 2–दूरीक एवं 2–मानकित समष्टियों पर विभिन्न प्रतिचित्रणी शर्तों एवं समष्टीय प्रतिबंधों के आधार पर प्राप्त किया गया है। पुस्तक में पाँच अध्याय है : प्रथम अध्याय परिचयात्मक है जिसमें विभिन्न गणितज्ञों द्वारा प्रतिपादित/अन्वेषित परिभाषाएँ उदाहरण सहित दी गई हैं। विभिन्न संकुचन सिद्धांतों एवं इनके व्यापीकरण का भी इसी अध्याय में उल्लेख किया गया है। उदाहरणों द्वारा कठिन परिभाषाओं को भी सुग्राह्य बनाने में लेखक द्वय का प्रयास सफल रहा है।

द्वितीय अध्याय में 2–दूरीक समष्टि में संकुचनीय प्रतिचित्रणों के स्थिर बिंदु के बारे में विस्तार से बताया गया है। तृतीय अध्याय में मतकोवस्की एवं युंक संकुचन प्रमेय का व्यापीकरण एवं एकीकरण करने वाले प्रतिचित्रण निकायों के लिए स्थिर एवं संपात समीकरण के हल प्राप्त किए गए हैं।

चतुर्थ अध्याय में 2–बानाख समष्टि के संवृत अवमुख उपसमुच्चयों पर परिभाषित क्रयविनिमेषी प्रतिचित्रणों के स्थिर बिंदु के अस्तित्व का अध्ययन किया गया है। अंतिम अध्याय में 2–मानकित समष्टि में अविस्तारी प्रतिचित्रणों के पुनरावृत्तियों की अभिसरण संबंधी समस्या पर कुछ परिणाम उपपत्ति सहित दिए गए हैं। दीर्घ संदर्भ सूची से स्थिर बिंदु प्रमेय संबंधी विषय पर व्यापक अध्ययन सामग्री द्वारा पाठकों को इस विषय पर शोध कार्यों में सहायता मिल सकती है। विषय सामग्री उपयोगी एवं अद्यतन हैं। भाषा हिन्दी की मानक तकनीकी शब्दावली के प्रयोग से सरल एवं स्पष्ट है।

भगवती प्रसाद चमोला
गणित विभाग
अभियांत्रिकी एवं प्रौद्यो. महाविद्यालय
गुरूकुल का. वि.वि.
हरिद्वार

(2)

पुस्तक : शल्य चिकित्सा के सिद्धान्त भाग–1
प्रथम संस्करण : 1997 **मूल्य :** 150/–
शल्य चिकित्सा के सिद्धान्त भाग–2
प्रथम संस्करण : 1999 **मूल्य** 65/–
लेखक : डॉ. कामता शंकर भार्गव, डॉ0 राजीव भार्गव

यह इस देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि आजादी के 54 वर्ष के बाद भी हम अपना अंग्रेजी मोह नहीं छोड़ पाए हैं और अपनी उच्च शिक्षा विशेषकर चिकित्सा शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम से ही दे रहे हैं। आज उत्तर भारत के अनेक प्रान्तों में 10+2 की शिक्षा हिन्दी माध्यम से ही हो रही है और अंग्रेजी एक सामान्य ज्ञान के रूप में। इन सबके बाद भी आज शायद भाषा के ज्ञान पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है और आज का विद्यार्थी

न तो हिन्दी ही ठीक से लिख–पढ़ पाता है और न ही अंग्रेजी। मेडिकल की भरती परीक्षा में भी वस्तुनिष्ठ आधारित प्रश्नों पर होती है अतः विद्यार्थियों के भाषा के ज्ञान का माप हो ही नहीं पाता है।

शायद आप विश्वास न कर पाएँ कि अनेकों मेडिकल कालेजों में भरती होने वाले प्रथम श्रेणी के विद्यार्थियों में से लगभग 10 प्रतिशत अपना श्रेष्ठता खो बैठते हैं और उसका सबसे बड़ा कारण है भाषाओं का पूरा ज्ञान न होना। पहले तो उसे 10+2 में हिन्दी में पढ़ाया गया– Premedical में भाषा ज्ञान की कोई परीक्षा नहीं हुई और मेडिकल कालेज में भरती होते ही 2800 पन्नों की छोटे अक्षरों की अंग्रेजी पाठ्य पुस्तक थमा दी गई। सोचिए उस विद्यार्थी की परेशानी और मानसिक कष्ट और फिर ऐसे में यदि वह आत्महत्या कर लेता है या परीक्षा में फेल हो जाता है तो आप किसे दोष देंगे ?

डॉ. भार्गवद्वय लिखित दोनों पुस्तकों में इसी कठिनाई को सुलझाने का प्रयत्न है और मुझे पूरी आशा है कि ये दोनों पुस्तकें हमारे हिन्दी भाषा विद्यार्थियों को शल्य चिकित्सा के सिद्धान्त और उनके व्यावहारिक दक्षता को समझने में बहुत सहायक होंगी। अच्छा होता कि हिन्दी शब्दों के ही अंग्रेजी शब्दों को दोनों लिपियों में साथ–साथ लिखा जाता, क्योंकि पुस्तक में पढ़ते समय उसका अंग्रेजी अनुवाद अध्याय के अन्त में बार–बार पढ़ने में व्यवधान पैदा करेगा। उनके इस कठिन परिश्रम और लगन के लिए उनको साधुवाद और अनेकों बधाईयां।

डॉ. आर.सी. गुप्त
78 बी, टैगोर टाउन
इलाहाबाद

पृष्ठ 11 का शेष

में होने वाले परिवर्तन होते हैं। यह सब लिखने का तात्पर्य यह है कि अधिकतर में फालोअप आवश्यक होता है।

विकसित देशों में 30 वर्ष की आयु के बाद हर दो या तीन वर्ष में एक बार जनन अंग की जाँच व पैप स्मियर को आवश्यक माना गया है। उसके अनुसार प्रजनन स्वास्थ्य सेवा हर महिला के लिए उपलब्ध है। इस प्रकार की नियमित व्यवस्था हमारे देश में नहीं है। परिवार कल्याण विभाग के अन्तर्गत चल रहे प्रसवोत्तर कार्यक्रम के अन्तर्गत कुछ शहरी केन्द्रों पर पैप स्मियर की सुविधा उपलब्ध है। मेडिकल कॉलेज से संलग्न और बड़े शहरों के निजी अस्पतालों में जहाँ पर स्त्री रोग व प्रसूति सेवाएँ विकसित हैं वहाँ पर इस कैन्सर निदान की सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

कैन्सर ग्रीवा समस्या की भीषणता का मुख्य कारण यह है कि हमारे यहाँ के लगभग 80 प्रतिशत प्रकरण ग्रामीण क्षेत्र के होते हैं। पिछले कई दशकों से इनकी संख्या में कमी नहीं आई है। इसके मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्र में निदान सेवाओं की बेहद कमी व लोगों में इसके प्रति जागरूकता का अभाव है। वर्षों से हमने यह पाया कि कैन्सर ग्रीवा से पीड़ित चिकित्सा करवाने हेतु शहरों के अस्पतालों में भर्ती होने वाली अधिकतर महिलाएँ इस कैन्सर के अन्तिम सोपान पर होती हैं।

इस समस्या की व्यापकता व गम्भीरता, ग्रामीण क्षेत्र में सेवाओं की कमी व अव्यवस्था, पीड़ित महिलाओं की अमानवीय दशा व ऊँची मृत्यु दर इत्यादि बातों को देखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन ने विकासशील देशों हेतु कैन्सर निदान की नवीन सोच दी है जिसे 'डाऊन स्टेजिंग' कहते हैं। इसमें ग्रामीण क्षेत्र में कार्यरत अनुभवी नर्स को योनि वीक्षण, योनि द्वारा जाँच व पैप स्मियर लेने का विशेष प्रशिक्षण दिया जाता है, ताकि वह अपने क्षेत्र में जाकर महिलाओं की जाँच करे। जाँच में अगर किसी में ग्रीवा विकृत लगती है तब उसे रेफरल सेन्टर या स्त्री रोग विशेषज्ञ के पास रेफर करें ताकि अग्रिम चिकित्सा की कार्यवाही हो सकें। डाऊन स्टेजिंग रणनीति का उद्देश्य आरम्भिक दशा में कैन्सर ग्रीवा को पकड़ना है ताकि समय पर उपचार हो और महिला व उसका परिवार उजड़ने से बच जाए।

10–11, बनेड़ा हाउस
फतहपुरा, उदयपुर
राजस्थान–313 004

विज्ञान प्रसार, नई दिल्ली

द्वारा प्रकाशित

पुस्तक

हिन्दी विज्ञान लेखन के 100 वर्ष

(1850–1950)

प्रथम खंड

संपादक – डॉ. शिवगोपाल मिश्र

मूल्य – 250/- रु०

प्रकाशन वर्ष 2001, प्रथम संस्करण

पुस्तक प्राप्ति हेतु सम्पर्क करें :-

विज्ञान परिषद् प्रयाग
महर्षि दयानन्द मार्ग
इलाहाबाद–211 002 (उत्तर प्रदेश)
फोन 0532–460001

अथवा

विज्ञान प्रसार
सी–24, कुतुब इंस्टीट्यूशनल एरिया
कुतुब होटल के पीछे
नई दिल्ली–110 016

टिप्पणी : पुस्तक के छपे मूल्य पर 20 प्रतिशत की छूट

विज्ञान परिषद प्रयाग द्वारा 3-4 नवम्बर 2001 को आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी की झलकियाँ

श्री दर्शनानन्द, डा० मनोज पटैरिया तथा डा० श्रवण कुमार तिवारी (बोलते हुए)

डा० डी. डी. ओझा, डा० सुबोध महन्ती और डा० हेम चंद्र जोशी (बोलते हुए)

डा० राम हरि सिंह, श्री राधाकान्त अंथवाल और डा० आर. सी. गुप्ता (बोलते हुए)